विषय—सूची

निवेदन

प्रस्तुत एकाङ्की नाटकों के उदय में हिन्दी-साहित्य में आधुनिक ढंग के एकाङ्की नाटकों के अभाव का हाथ है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हिन्दी-साहित्य में अब तक एकाङ्की नाटक लिखे ही नहीं गए हैं। ऐसे नाटकों की संख्या बहुत है। मेरे कहने का मुख्य आशय यह है कि हिन्दी-साहित्य में अभी ऐसे एकाङ्की बहुत कम लिखे गये हैं, जो पाठकों का बहुत ही कम समय लेकर किसी एक तीव्र सम्वेदना की स्थिति में हम को पहुँचा दे। मेरे विचार से ऐसा तब ही हो सकता है जब कि हम स्थान, समय और क्रिया—व्यापार में एकता (unity of place, time and action) स्थापित कर सकें। अतः प्रस्तुत पुस्तक के अधिकांश नाटकों में केवल एक ही दृश्य में कुछ ही पात्रों की सहायता से पाठकों को तीव्र संवेदना-स्थल तक पहुँचाने का प्रयत्न किया गया है। इस गुरुत्तर कार्य में मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ, इसका निर्णय तो रसिक पाठक एवं विद्वान् ही करेंगे।

आधुनिक एकाङ्की नाटकों में उपर्युक्त गुणों का होना क्यों आवश्यक है? इसका उत्तर बहुत साधारण-सा है। हमारा जीवन

धीरे-धीरे समय के परिवर्तन के साथ-साथ इतना व्यावहारिक बनता जा रहा है कि हम को सदैव समय का अभाव-सा मालूम पड़ता है। एक क्लार्क, जो प्रातः काल से लेकर सायंकाल तक फाइलों से मल्ल-कुश्ती करता रहता है, उसके पास रात को तीन घंटे लगातार बैठकर उपन्यास या पूर्ण नाटक पढ़ने के लिए समय कहाँ है? ऐसी अवस्था में उसको वही साहित्य अधिक रुचिकर होगा, जो उसको अल्प समय में ही पर्याप्त आनन्द दे सकता है। आनन्द देना ही तो साहित्य का मुख्य लक्ष्य है। यही दशा समाज की जटिल (Complicated) परिस्थितियों में फँसे हुए एक व्यापारी और एक मजदूर की है। यही कारण है कि एकाङ्की नाटकों और छोटी कहानियों का सम्मान आज-कल के व्यावहारिक समाज में अधिक है।

इस पुस्तक में नौ (९) मौलिक एकांकी नाटक विद्यमान हैं और मैंने इस पुस्तक का नाम 'प्रतिज्ञा' रख दिया है। इसका कारण केवल यही है कि इस एकांकी नाटक के कथोपकथन, वस्तु, स्थान, समय और क्रिया-व्यापार की एकता और इनके द्वारा पड़ने वाले प्रभाव की सुगुता के तत्वों ने मुझे कुछ अधिक प्रभावित किया। अतः हृदय की प्रेरणा से मैंने ऐसा कर दिया है। यह भी सम्भव है कि पाठकों को इस पुस्तक के किसी अन्य नाटक में अधिक सम्वेदना हो, परन्तु यह रुचि-वैभिन्न्य का प्रश्न है।

मैं यह नौ एकाङ्की नाटकों की पुस्तक मेरे पूज्य गुरुदेव आचार्य पं० श्री रामकृष्ण शुक्ल एम० ए०, अध्यक्ष हिन्दी-विभाग

महाराजा कालिज, जयपुर, डीन आफ फॉकल्टी आफ आर्टस्, राजस्थान विश्वविद्यालय को सादर समर्पित कर रहा हूँ। यह सब पूज्य गुरुदेव के आशीर्वाद एवं कृपा का ही फल है। मेरी यत्किंचित् साहित्यिक प्रवृत्ति को श्रद्धेय गुरुदेव का परम अनुग्रह और प्रोत्साहन प्राप्त होता रहा है। अतः यह उन्हीं की वस्तु है। कई कठिनाइयाँ होते हुए भी उन्होंने मुझे इसके समर्पण की अनुमति प्रदान की है। आपकी इस उदारता एवं कृपा का मैं सदा हृदय से कृतज्ञ रहूँगा।

श्रीमान् प्रो० सरनामसिंह शर्मा 'अरुण' एम. ए., महाराजा कालिज, जयपुर ने इस पुस्तक की भूमिका लिखने की जो कृपा की है इसके लिए मैं प्रोफेसर साहब को हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

मेरे मित्र और सहपाठी, पं० राधागोपालजी भावन बी. ए., सीनियर हिन्दी-संस्कृत टीचर, गवर्नमेण्ट हाई स्कूल गंगापुर ने प्रारम्भ से ही इस पुस्तक के लिखने में मेरी निरन्तर सहायता की है। 'पर्जन्य-यज्ञ' की रूप-रेखा और गायन तो उन्हीं के प्रतिभाशाली व्यक्तित्व की देन हैं। इस सहायता के लिए मैं अपने मित्र का सदैव कृतज्ञ रहूँगा।

अब इस पुस्तक का दूसरा संस्करण हम अपने सुहृदय पाठकों की सेवा में पुनः समर्पित कर रहे हैं। संयुक्त राजस्थान के प्रसिद्ध

साहित्यिकों ने इस पुस्तक में प्रकाशित मौलिक एकांकी नाटकों को जो स्थान दिया है, उनके इस निर्णय के लिए मैं उनको हृदय से धन्यवाद देता हूँ। यदि भगवान् की कृपा हुई और गुरुजनों का आशीर्वाद प्राप्त होता रहा, तो भविष्य में भी मैं इसी प्रकार हिन्दी-साहित्य की एवं विद्यार्थियों की सेवा करने का प्रयत्न करता रहूँगा।

इस पुस्तक को इस रूप में छापने में मेरे कनिष्ठ सहोदर चि० मदनमोहन शर्मा ने जो परिश्रम किया है और बा० कन्हैयालाल सेठ ने पुस्तक को प्रकाशित करवाने का जो कष्ट किया है, उसके लिए ये दोनों सज्जन भी धन्यवाद के पात्र हैं।

हरिनारायण मैणवाल

प्रस्तावना

ज्ञान के सञ्चित भण्डार का नाम ही साहित्य है। साहित्य का निर्माण गद्य और पद्य, दोनों रूपों में होता रहता है। दोनों रूपों को ही साहित्य-विशारद काव्य-संज्ञा से सम्बोधित करते हैं। किन्तु देखने और सुनने की भावना के विचार से काव्य के दृश्य और श्रव्य-दो अन्य रूप हैं। दृश्य-काव्य में अभिनय की प्रधानता रहती है। इसका आनन्द नेत्रों द्वारा प्राप्त होता है। सुनने से रसास्वादन नहीं हो पाता। यहाँ 'नट' की चेष्टाओं, उसके हाव-भावों से कथानक का बहुत सा मर्म समझ लिया जाता है। इसी कारण काव्य के इस रूप को दृश्य-काव्य कहते हैं। किन्तु जिस काव्य में अभिनय की आवश्यकता नहीं होती, जिसमें रसानुभूति श्रवण-पथ से ही होती है, जिसमें नेत्रों का विशेष उपयोग नहीं होता (कभी-कभी बिल्कुल ही आवश्यकता नहीं होती) उसे श्रव्य-काव्य कहते हैं। दृश्य-काव्य को रूपक या नाटक भी कहते हैं

नाटक का इतिहास अभी तक अज्ञान के गर्भ में पड़ा हुआ है। निश्चयरूप से यह कोई नहीं कह सकता कि नाटक का उदय कब

हुआ। यद्यपि नाट्यशास्त्र में इस इतिहास का विवेचन है, परन्तु उसे वैज्ञानिक इतिहास नहीं कह सकते। उसका आधार केवल भाव-कल्पना है। भारतीय जनता की आदिम काल से ही ऐसी प्रवृत्ति रही है कि वह प्रत्येक कारण को धर्म में ढूँढ़ने का प्रयास करती है। इसमें सन्देह नहीं कि हमारी अनेक रूढ़ियां, प्रथाओं और भावनाओं का उत्तरदायित्व हमारे धर्म पर है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में इसी आधार को विश्वास के ऊपर लादा गया है। कहा गया है कि "महेन्द्र आदि देवताओं के प्रार्थना करने पर ब्रह्मा ने नाट्यवेद की रचना की और वेद कोटि में उसका पाँचवाँ स्थान हुआ।" उसके निर्माण के लिए विभिन्न वेदों से विभिन्न सामग्री का उपयोग किया गया। ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लिया। शिव और पार्वती ने अपने परम अनुग्रह से क्रमशः ताण्डव और लास्य नृत्य का दान किया। इस प्रकार सब उपकरणों को एकत्रित करके अभिनय-कार्य भरत मुनि को दिया गया। उन्होंने अपने पुत्रों से उसका अभिनय कराया।

कुछ लोगों का मत है कि नाटक का जन्म वैदिक संवादों ।हुआ है। वेदों के इन संवादों का यज्ञ के अवसर पर ऋत्विक्जन ान करते थे और वह गान संवाद रूप में होता था। यह मत भी ुछ अधिक खींच तान से लिया गया है। मैं तो इन दोनों विचारारणियों को निराधार समझता हूँ। पहला मत तो बिल्कुल अवैज्ञा-

निक है । हाँ, दूसरे में विज्ञान के लिए अवकाश है, किन्तु विचार बहुत दूरस्थ है । इसे मैं विलष्ट कल्पना ही कहूँगा। यज्ञ के अवसरों पर संवादों को यह नाटकीय रूप मिला होगा या नहीं इसका ठीक-ठीक अनुमान नहीं किया जा सकता । किन्तु ऐसे सम्वादों से नाटक के उदय में बड़ी सहायता मिली होगी, इस बात को स्वीकार करने में कुछ आपत्ति भी नहीं है ।

नाटक का उद्देश्य रस या आनन्द है । इस आनन्द का रूप सामाजिक है, वैयक्तिक नहीं; क्योंकि नाटक का अभिनय और दर्शन समाज की वस्तु है । सामाजिक आनन्द या रसानुभूति का आयोजन उत्सवों से सम्बन्ध रखता है । वे उत्सव लौकिक और धार्मिक दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं । सम्भवतः धार्मिक उत्सवों पर धार्मिक नाटकों का अभिनय उत्सवों के समारोह के लिए उपयुक्त समझा गया होगा, फिर वह परम्परा कुछ रूढ़ होगई होगी और लौकिक उत्सवों (विवाह, जन्म आदि संस्कारों) पर, भी उनका प्रचलन हो गया होगा । इस कला का विकास राजसभाओं में अवश्य हुआ, इसमें सन्देह नहीं है क्योंकि शासन के उत्साह के बिना ऐसी सार्वजनिक वस्तु का प्रचलन अथवा विकास अधिक संभव नहीं। राजाओं के प्रोत्साहन से ही इस कला और साहित्य ने उन्नति की है, यह बहुत संभव प्रतीत होता है ।

हिन्दी साहित्य में नाटक का प्रचलन बहुत प्राचीन नहीं है ।

वीरगाथा काल में नाटकीय साहित्य को कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। वह युद्धकाल था, वहाँ वीर-कथाओं के लिए ही स्थान था। निर्गुण और प्रेम-साहित्य में भी नाटकों का अभाव रहा। भक्तिकाल में एक दो रचना हुई किन्तु उनमें नाटकीय गुणों का अभाव होने से वे नाटक का उचित पद न पा सके। हिन्दी के नाटक धर्म का आधार लेकर उठे। वे शान्तरस में पैदा हुए और धीरे-धीरे विकास होता गया और नाटक की प्रवृत्ति लौकिक मनोरंजन की ओर होती गई। बनारसीदास जी का 'समयसार' प्राणचन्द चौहान का 'रामायण महानाटक' इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। 'देवमाया प्रपंच' और 'हनुमाननाटक' भी इसी प्रकार के हैं। वे सभी पद्यमय हैं। भारतेन्दुजी के मत से महाराज विश्वनाथसिंहजी का 'आनन्दरघुनन्दन' नाटक के गुणों से उपेत है। रीतिकालीन नाटकों में हम तीन विशेषताएँ देखते हैं:—(१) अधिकांशतः अनुवाद हैं, (२) धार्मिक या पौराणिक हैं, (३) व्रजभाषा में हैं।

हिन्दी में नाटकों का समुचित विकास भारतेन्दुजी से होता है। भारतेन्दुजी ने कुछ नाटक संस्कृत से अनुवाद किए हैं, कुछ बङ्गला और अङ्गरेजी से प्रभावित होकर लिखे हैं। उनके मौलिक नाटकों में नाट्यशास्त्र की कुछ रूढ़ियाँ उपेक्षित हो गई हैं। किन्तु अनेक बातें भारतीय नाट्यकला के अनुकूल हैं। वे प्राचीनता से बिल्कुल हटे नहीं थे। उनके नाटकों में नान्दी और भरतवाक्य का

परित्याग नहीं किया गया। पद्य भाग व्रजभाषा में लिखा गया है और गद्य का भाग खड़ी बोली में है।

आधुनिक युग में नाटकों का अभाव नहीं है। किन्तु प्राचीनता का बहिष्कार मिलता है। संस्कृत से अनूदित नाटकों को छोड़ कर, सब में पाश्चात्य प्रभाव की प्रधानता है। नांदी और भरतवाक्य बहुधा नहीं मिलते हैं। विट् या विदूषक अनिवार्य नहीं है। हास्य-संवाद के लिए किसी भी पात्र का चयन हो सकता है। एक या अनेक पात्र इस रस का प्रादुर्भाव कर सकते हैं।

कथानक प्रख्यात, काल्पनिक या मिश्रित कैसा भी हो सकता है। आधुनिक नाटकों की प्रवृत्ति प्रायः काल्पनिक है, जिसमें सामाजिक समस्याएँ रहती हैं। प्रसादजी इस युग के नेता हैं। उनके नाटक ऐतिहासिक एवं मनोवैज्ञानिक हैं। अब भी ऐतिहासिक नाटकों का अभाव नहीं है, किन्तु एकांकी नाटकों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण बदलता जा रहा है। विचार और शैली प्रायः अँगरेजी साहित्य से प्रभावित है।

परन्तु आजकल विश्व-साहित्य में एकांकी नाटकों की धूम मच रही है। हिन्दी ने भी एकांकी के सृजन में उपयुक्त भाग लिया है। किन्तु हिन्दी में एकांकी नाटकों का प्रचलन कब और क्यों हुआ यह प्रश्न कुछ जटिल-सा प्रतीत होता है। कुछ विद्वानों का विचार है कि एकांकी नाटक का ढाँचा अभारतीय है और हिन्दी ने इसे अभारतीय साहित्य से ही लिया है।

यह कहना अवश्य ही भ्रान्तिपूर्ण होगा कि हिन्दी के सामने एकांकी नाटक का कोई भारतीय आदर्श नहीं था। हिन्दी की मातामही, संस्कृत, का कोष इतना पूर्ण है कि साहित्य का कोई भी अंग उसमें सहज ही मिल जाता है। हम यह बात पक्षपात की दृष्टि से नहीं कह रहे हैं अपितु इसके प्रमाण उपस्थित हैं। धनञ्जय ने दशरूपक में रूपक के दश भेद बताए हैं। उनमें से 'भाण', 'वीथी', और 'अंक' एकांकी नाटक की प्राचीन सत्ता का साक्ष्य देते हैं। भाण का ढाँचा तो इतना विचित्र होता है कि अभारतीय साहित्यों में कदाचित ही इस विचित्रता के दर्शन किए हों।

भाण में एक ही अंक और एक ही पात्र होता है। यह पात्र कोई बुद्धिमान् विट होता है जो अपने तथा दूसरों के धूर्ततापूर्ण कृत्यों को वार्तालाप के रूप में प्रकाशित करता है। वार्तालाप किसी कल्पित व्यक्ति के साथ होता है। रंगमंच पर आकर नायक आकाश की ओर देखता हुआ सुनने का नाट्य करके कल्पित पुरुष की उक्तियों को स्वयं दुहराता है और उनका उत्तर देता है। इस प्रकार की उक्ति-प्रत्युक्ति को 'आकाशभाषित' कहते हैं। इसमें वास्तव में मनुष्य अपने ही आप दो मनुष्यों का काम करता है, अर्थात् स्वयं प्रश्न करता है और स्वयं ही उसका उत्तर देता है, तथा शौर्य और सौन्दर्य के वर्णन से वीर एवं शृङ्गार रस का आविर्भाव करता है। भाण में प्रायः भारती वृत्ति का आश्रय लिया जाता है। कहीं-कहीं कैशिकी का भी प्रयोग होता

है। इसमें मुख और निर्वहण दो संधियाँ होती हैं। लास्य के दश अङ्ग भी इसमें व्यवहृत हो सकते हैं। इसका कथानक कल्पित होता है।

वीथी में भी एक ही अङ्क होता है और कोई उत्तम, मध्यम पुरुष उसका नायक होता है, पात्र एक ही दो होते हैं। भाण के समान आकाशभाषित के द्वारा उक्ति-प्रत्युक्ति होती है, शृङ्गार रस का बाहुल्य रहता है और इसी कारण स्वभावतः कैशिकीवृत्ति की प्रधानता रहती है। इसमें मुख और निर्वहण संधियाँ तथा पाँचों अर्थ-प्रकृतियाँ होती हैं और वीथ्यंगों का भी समावेश होता है।

'अङ्क' में भी एक ही अङ्क होता है, और साधारण पुरुष नायक होता है। इसका इतिवृत्त प्रख्यात होता है, परन्तु कवि अपनी कल्पना से उसके विस्तारों को इच्छित स्वरूप दे सकता है। इसमें स्त्रियों का विलाप प्रचुरता से होता है। फलतः करुण-रस की प्रधानता होती है। इसमें जय तथा पराजय का वर्णन रहता है। युद्ध घात-प्रतिघात या प्रहारमय नहीं होता वरन् वाणी का होता है। वैराग्य-विकासिनी भाषा का उपयोग होता है और भाण के समान ही मुख तथा निर्वहण-संधियाँ, और कहीं भारती तथा कहीं कैशिकी वृत्ति एवं लास्य के दसों अङ्ग होते हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह सिद्ध है कि भारतीय साहित्य का वर्तमान एकांकी नाटक के स्वरूप से भी अधिक विकसित स्वरूप उप-

स्थित था। अब देखना यह है कि क्या हिन्दी ने भी यह स्वरूप संस्कृत से ही लिया है अथवा किसी अभारतीय साहित्य से। हमें यह स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं कि हिन्दी को यह दान अँग्रेजी ने दिया है। बीसवीं शताब्दी में हिन्दी और अँग्रेजी का सम्पर्क इतना निकट-तम होगया है कि हिन्दी ने अँग्रेजी के रंग में अपने को बहुत कुछ रंग डाला है।

अङ्गरेजी में एकांकी नाटक का इतिहास अधिक प्राचीन नहीं है वैसे तो प्राचीनकाल से सी छोटे-छोटे दृश्य रंग-मंच पर दिखाए गये हैं। Everyman और The four Pr. एकांकी नाटक के प्राचीन स्वरूप का प्रमाण देते हैं। किन्तु एकांकी नाटक का वास्त-विक विकास प्रथम महायुद्ध के पश्चात् ही हुआ है। युग की भौतिक प्रधानता के कारण छोटे नाटक का स्वरूप शीघ्र ही लोकप्रिय भी हो गया। अमेरिका में एकांकी नाटक का विशेष आदर हुआ। अमेरिका निवासियों को विविधता variety अति प्रिय है। अतः एक विशाल नाटक की अपेक्षा कई भिन्न-भिन्न रसों के नाटक देखना उन्हें अधिक रुचिकर प्रतीत हुआ। इस युग में पूँजीपतियों के पास इतना समय कहाँ जो अपने तीन-तीन, चार-चार घंटे मनोविनोद में नष्ट कर सकें अतएव उनकी रुचि ने एक छोटी वस्तु की, जो थोड़ा समय ले, आव-श्यकता उपस्थित की। परिणामतः वर्तमान एकांकी नाटक का विकास हुआ।

इस प्रकार युग की आवश्यकता ने साहित्यकारों की लेखनी के रुख को फेर दिया। इन नाटकों से पाश्चात्य जीवन में एक नया संचार हुआ। इसका प्रमाण इन नाटकों की सफलता है। जनता की नाट्य-रुचि के उत्साह को एकांकी के विकास से असीम सहायता मिली है। न केवल इनका प्रचार रंग-मंच पर है, अपितु स्कूल और कालिजों में भी इन्होंने अपना प्रभुत्व प्राप्त कर लिया है।

अङ्गरेजी लेखकों ने नाटकों को पुस्तकाकार कर लिया है, जिनका पठन-पाठन में उपयोग होरहा है। शॉ (Shaw) गाल्जवर्दी (Glasworthy) और यीट्स (Yeats) आदि लेखकों ने इस दिशा में युग-प्रवंतक का काम किया है। शॉ का 'दी मैन आफ डैस्टिनी', 'दी डार्क लेडी आफ दी सौनेट्स' और सींज के 'राइडर्स टू दी सी' उत्तम एकांकी नाटकों के उदाहरण हैं।

हिन्दी में एकांकी का प्रचलन अङ्गरेजी के अनुकरण पर हुआ है। पं० बद्रीनाथ भट्ट ने मनोरंजक प्रहसन लिखकर एकांकी का द्वार खोल दिया था। उनकी 'चुंगी की उम्मेदवारी' में विनोद की सुन्दर सामग्री प्रस्तुत है। 'प्रसाद' का 'एक घूंट' सफल एकांकी का ज्वलन्त उदाहरण है। इसमें जीवन की विनोदपूर्ण सामग्री और काव्य की मनोहर झाँकी मिलती है। कुछ काल से पं० गोविन्दवल्लभ पंत और सुदर्शनजी ने अनेक एकांकी नाटक लिके हैं जिनका समय-समय पर मासिक पत्रों में प्रकाशन होता रहा है। इन नाटकों में उज्ज्वल

भविष्य का संदेश नहीं है । 'लकीर की फकीरी' ही इनमें मिल सकी है ।

एकांकी नाटकों में श्री भुवनेश्वर प्रसादजी का संग्रह 'कारवाँ' साहित्य-शक्ति और उत्थान के चिन्ह लेकर आया है । 'कारवाँ' में जिस विद्रोह का उद्‌घाटन है उसका श्रेय बच्चन और भगवतीचरण वर्मा को भी नहीं मिल पाया । कारवाँ पर पाश्चात्य विचार धारा और निर्माण-पद्धति का गहरा प्रभाव है, यहाँ अवसाद और उद्विग्नता की घोर अन्तर्ध्वनि है, विप्लव की महाज्वाला धधक रही है, ऐसी ही रचनाएँ पतित साहित्य का उद्धार कर सकती हैं ।

श्री पृथ्वीनाथ शर्म्मा, डा० रामकुमार वर्मा, श्रीगोविन्दबल्लभ पन्त, श्री भगवतीचरण वर्मा, श्री सज्जाद जहीर आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । श्री पृथ्वीनाथ शर्मा का 'दुविधा' पाश्चात्य प्रभाव से ओत-प्रोत है किन्तु उसमें वह चुस्ती और गर्मी नहीं जो 'कारवाँ' में है । श्री सज्जाद जहीर राजनीति की ओर अधिक झुक गये हैं अतः इनके एकांकी नाटक राजनीतिक कला का परिचयमात्र दे रहे हैं । डाक्टर रामकुमार वर्मा ने अपना एक संग्रह 'पृथ्वीराज की आँखें' नाम से प्रकाशित कराया है । 'बादल की मृत्यु', 'चम्पक', और नहीं का रहस्य समय की ध्वनि से अनुप्राणित हैं, किन्तु जैसा कि दुलारेलालजी का भ्रम है वर्मा जी को हम पथ-प्रदर्शक के रूप में नहीं देख पाये हैं। डा० वर्मा ने एकांकी साहित्य का बहुत कुछ

परिमार्जन किया है किन्तु 'कारवाँ' की सी 'सरगर्मी' उनके नाटकों में अप्राप्य है। श्री भगवतीचरणजी वर्मा की कहानियों पर नाट्य-पद्धति की काफी छाप है। चित्रपट के वैयक्तिक अनुभव से भी आपका इधर आकर्षण हुआ है।

अज्ञेय, नरेन्द्रशर्मा, सेठ गोविन्ददास, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', उदयशंकर भट्ट, और अहमदअली भी इस ओर अपनी रचनासरिता बहा रहे हैं। हमें आशा है कि इनसे साहित्य को प्रचुर नाटकीय सामग्री मिल सकेगी।

वर्तमान समय में एकांकी के इस वर्द्धमान प्रसार को देख कर यह जिज्ञासा सहज ही उत्पन्न होती है कि 'एकांकी' क्या है? भारतीय साहित्य में तो जो दो चार प्रकार के एकांकी परिगणित कराये गये हैं उनका नाटक के विशाल वर्ग में ही समाहार कर दिया गया है; एकांकी कोई अलग वर्ग नहीं माना गया है। आजकल का एकांकी एक वर्ग का महत्व रखता है। वह अनेकांकी की अथवा पूर्ण नाटक से अपनी रचना प्रणाली में समानता रखता हुआ भी अपनी कुछ ऐसी विशेषताएँ भी रखता है जो उसे नाटक से भिन्नता प्रदान करती हैं।

प्रणाली की दृष्टि से एकांकी भी नाटक की भाँति केवल पात्रों के कथोपकथन के रूप में ही लिखा जाता है। नाटक में कवि के वर्णनों का स्थान नहीं होता, परन्तु कवि उसमें स्थान-स्थान पर रंग-संकेत दे देता है। एकांकी में भी यह ही बात होती है। नाटक में

पात्रों के क्रिया-व्यापार (Aotion) की भी अपेक्षा विशेष रहती है, जिसका आंशिक कारण उसके कथोपकथन-पद्धति है। एकांकी में भी क्रियाव्यापार की वाञ्छा रक्खी जाती है।

कथोपकथन और क्रिया-व्यापार की पद्धति के मौलिक उद्देश्य में हम दर्शक या पाठक पर पड़ने वाले भाव की ऋजुता (Direotness) को तलाश कर सकते हैं। एकांकी में भी यह ऋजुता अभिप्रेत है।

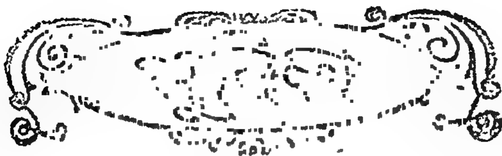
भारतीय परम्परा के पूर्ण नाटकों में पाँच से दस तक अङ्क हो सकते थे। पाश्चात्य पूर्ण नाटकों में कम से कम तीन अङ्क देखे जाते हैं। पूर्ण नाटकों के प्लाट का यह अङ्क-विभाग कथानक के भिन्न-भिन्न दिक्परिवर्तनों अथवा उसके विभिन्न अङ्गों के पारस्परिक विच्छेद से उत्पन्न होने वाली आवश्यकता के कारण से होता था। कथानक के दिशापरिवर्तन अथवा उसके अङ्ग-सङ्गठन का हेतु होती थी उसमें वर्णित जीवन की यथासाध्य पूर्णांगता परन्तु एकांकी में जीवन की पूर्णांगता उसके कथानक का आधार नहीं होती। एकांकी का कथानक आजकल की संक्षिप्त कहानी (short story) की भाँति जीवन के किसी एक क्षणिक सम्वेदन का आश्रय ढूँढ़ता है। इस रूप में नाटक और एकांकी का बहुत कुछ वैसा ही भेद सम्बन्ध है जैसा कि उपन्यास और आधुनिक कहानी का। इसीलिए 'एकांकी एकांकी ही होता है' उसके छोटे से क्षण के लिए एक अङ्क से अधिक की आवश्यकता नहीं है। यह

यह बात अवश्य है कि क्षणिक सम्वेदना की दशा में भी घटनादि के छोटे-मोटे आवर्तन प्रत्यावर्तन की परिस्थितियाँ हो सकती हैं जिनके कारण अङ्क के भीतर छोटे-छोटे दृश्यों की अवतारणा हो सकती है, परन्तु आवर्तन और प्रत्यावर्तन तथा उनके निर्देशक दृश्य यदि किसी एकांकी में अधिक जटिल होने लगें और कथानक के विकास में विशालता का कारण बनने लगे हैं, तो समझना होगा कि वह एकांकी अनेकांकी न होता हुआ भी अनेकांकी की पूर्णता का मार्ग ग्रहण कर रहा है और अपने उद्देश्य से भ्रष्ट हो रहा है क्यों कि कहानी की भाँति ही एकांकी में भी सम्वेदना की तीव्रता ही वाञ्छनीय होती है।

सम्वेदना की इस तीव्रता का दूसरे शब्दों में अर्थ होता है एकांकी के प्रभाव की ऋजुता का तीव्रतम होना। इसके लिए जहाँ एक ओर एकांकी में भी आकस्मिकता, गोपन, व्यञ्जना आदि कहानी के भिन्न-भिन्न तत्वों की आवश्यकता पड़ती है, वहीं इन तत्वों के प्रयोग के लिए उसके उपकरणों अर्थात् कथोपकथन और क्रिया-व्यापार के आचरण में ही विलक्षणता लाने की आवश्यकता होती है, क्योंकि कथोपकथन और क्रिया-व्यापार ही तो एकांकी की ऋजुता के साधक हैं। आजकल के सफल एकांकियों में हम इन तत्वों को पाते हैं और देखते हैं कि कभी-कभी तो किसी सफल कलाकार के हाथ में आकर उसका कोई एकांकी एक दृश्य से भी अधिक की कामना नहीं रखता और उसका एक दृश्य भी प्रायः छोटा-सा परन्तु अपने प्रभाव

में भरपूर होता है, जैसे भगवतीचरण वर्मा का 'सब से बड़ा आदमी'। इसका मतलब यही है कि कलाकार अपने सम्वेदना-स्थल के स्थान को पहचान कर और पकड़कर उसे एकान्त-निर्दिष्ट बना सका है और एकांकी के उद्देश्य से किञ्चन्मात्र भी नहीं बहका है। हिन्दी में ऐसे एकांकी अभी बहुत कम हैं। परन्तु अभी यहाँ आरम्भ ही तो है।

प्रो० सत्नामसिंह शर्मा 'अरुण'



प्रस्तुत पुस्तक मौलिक एकांकियों का संग्रह है। इसमें लेखक ने अपने अध्यवसाय के साथ अदम्य उत्साह का परिचय दिया है। यहाँ कथानक प्रायः ऐतिहासिक और पौराणिक हैं, किन्तु 'सौभाग्य-सिंदूर' और 'गरीब का संसार' ने काल्पनिक क्षेत्र में एक बड़े अभाव की पूर्ति की है। आधुनिक साहित्य में प्राचीन और अर्वाचीन के सम्मिलित वातावरण की कितनी आवश्यकता है, उसे संस्कृति और समाज के प्रति सावधान सभी साहित्यिक जानते हैं। इस आवश्यकता की पूर्ति पर ही किसी लेखक की सफलता निर्भर है। नाटकों में, वातावरण की निर्मिति में, जिस सूझ-बूझ से काम लिया गया है, वह लेखक के उत्साह एवं प्रयास को अद्भुत प्रोत्साहन देनेवाली है।

'वस्तु' भाग के अतिरिक्त चरित्र-चित्रण भी एकांकिकार के भावों की अकृत्रिम पेटिका है। पात्रों की कृतिवत्ता और मनोवृत्तियों

पर उनके विधाता की नैसर्गिक रुचि एवं सांस्कारिक परिशोध की छाप लगी हुई है। कहीं-कहीं कुछ स्थलों पर अप्रौढ़ अनुभव के दलदल में फँसकर भावों और क्रियाओं के सुव्यवस्थिकरण में नव लेखक को कुछ शैथिल्य-दोष का भागी भी होना पड़ा है, किन्तु इससे भावी-कृतियों की प्राञ्जलता को अधिक सहायता मिल सकेगी।

जिस उद्देश्य को लेकर लेखक ने अनुगमन किया है, उसका यथाशक्ति निर्वाह भी किया गया है। किसी लेखक के उत्साह और कौशल का पूर्ण परिचय देनेवाली एक यही वृत्ति है। साहित्य का गौरव उसके उद्देश्य और निर्वाह पर आधारित है। अनुभव और शैली के होते हुए भी जिस लेखक में उद्देश्य निर्वाह की क्षमता नहीं, उसके सब प्रयत्न असफल रहते हैं। प्रयत्नों का समाहार फलागम में होना अनिवार्य है, किन्तु प्रारम्भ, प्राप्त्याशा और नियताप्ति का संवरण एवं यथास्थानिक मूल्य भुलाया नहीं जा सकता क्योंकि असंयुक्त के संयोग कराने में इनकी बड़ी आवश्यकता है। इस दिशा में प्रस्तुत लेखक की अभग्न सफलता स्तुत्य है।

प्रस्तुत संग्रह की भाषा को प्रांजल तो नहीं कह सकते, और न लेखक का दृष्टिकोण ही भाषा की प्रांजलता पर रहा है, परन्तु उर्दू और हिन्दी के, बोल—चाल के, शब्दों से भाषा में अनेक स्थलों पर 'टकसालीपन' आगया है। जहाँ लेखक ने संस्कृत के दुरुह कोष में

प्रवेश करने की इच्छा की है; वहीं उसे ठोकर-सी खानी पड़ी है, परन्तु ऐसी स्थिति लेखक के सम्बन्ध में पाठक की सु-धारणा का अपहरण नहीं कर सकती। वह उसके नवोत्साह की परिचायक है ।

मैं लेखक के उज्ज्वल, कृतिमय भविष्य की मंगल-कामना करता हूँ।

प्रो० सरनामसिंह शर्मा 'अरुण'

पर उनके विधाता की नैसर्गिक रुचि एवं सांस्कारिक परिशोध की छाप लगी हुई है। कहीं-कहीं कुछ स्थलों पर अप्रौढ़ अनुभव के दलदल में फँसकर भावों और क्रियाओं के सुव्यवस्थिकरण में नव लेखक को कुछ शैथिल्य-दोष का भागी भी होना पड़ा है, किन्तु इससे भावी-कृतियों की प्राञ्जलता को अधिक सहायता मिल सकेगी।

जिस उद्देश्य को लेकर लेखक ने अनुगमन किया है, उसका यथाशक्ति निर्वाह भी किया गया है। किसी लेखक के उत्साह और कौशल का पूर्ण परिचय देनेवाली एक यही वृत्ति है। साहित्य का गौरव उसके उद्देश्य और निर्वाह पर आधारित है। अनुभव और शैली के होते हुए भी जिस लेखक में उद्देश्य निर्वाह की क्षमता नहीं, उसके सब प्रयत्न असफल रहते हैं। प्रयत्नों का समाहार फलागम में होना अनिवार्य है; किन्तु प्रारम्भ, प्राप्त्याशा और नियताप्ति का संवरण एवं यथास्थानिक मूल्य भुलाया नहीं जा सकता क्योंकि असंयुक्त के संयोग कराने में इनकी बड़ी आवश्यकता है। इस दिशा में प्रस्तुत लेखक की अभग्न सफलता स्तुत्य है।

प्रस्तुत संग्रह की भाषा को प्रांजल तो नहीं कह सकते, और न लेखक का दृष्टिकोण ही भाषा की प्रांजलता पर रहा है, परन्तु उर्दू और हिन्दी के, बोल-चाल के, शब्दों से भाषा में अनेक स्थलों पर 'टकसालीपन' आगया है। जहाँ लेखक ने संस्कृत के दुरूह कोष में

प्रवेश करने की इच्छा की है; वहीं उसे ठोकर-सी खानी पड़ी है, परन्तु ऐसी स्थिति लेखक के सम्बन्ध में पाठक की सु-धारणा का अपहरण नहीं कर सकती। वह उसके नवोत्साह की परिचायक है।

मैं लेखक के उज्ज्वल, कृतिमय भविष्य की मंगल-कामना करता हूँ।

प्रो० सरनामसिंह शर्मा 'अरुण'

प्रतिज्ञा

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

१—महाराज नन्द (मगध के महाराज)

२—मंत्री राक्षस (मगध के महामन्त्री)

३—प्रतिहारी

४—राजदूत

५—वररुचि (कात्यायन)

६—विष्णुगुप्त (चाणक्य)

७—चन्द्रगुप्त (मौर्य सेनापति का पुत्र और मगध का भावी सम्राट)

स्त्री-पात्र

१—स्वर्णरेखा (नर्तकी)

प्रतिज्ञा

(मगध के महाराज नन्द का सभाभवन:—महाराज नन्द स्वर्ण के एक उच्च सिंहासन पर आरूढ़ हैं; और सिंहासन के दोनों ओर दो युवतियाँ चमर हिला रही हैं। भवन के मध्य में एक नर्तकी मदिरा का पात्र हाथ में लिए हुए गा रही है। समस्त सभासद मद-मस्त एवं विलासी-से दिखाई दे रहे हैं और गाना सुन रहे हैं)

गायन

नर्तकी:—

मेरे मन की मधुशाला में;
पीओ और पिलाते जाओ।
मधु से पात्र भरा है मेरा;
आओ, अपनी प्यास बुझाओ॥

महाराज नन्द:—(मस्ती से) सुन्दरी, एक पात्र कादम्ब और।

(नर्तकी गाती हुई मदिरा का पात्र नन्द के होठों पर

लगाती है और नन्द एक घूँट पीते हैं) तुम्हारे इन कोमल हाथों में यह पात्र कितना सुन्दर दिखाई दे रहा है ?

(नन्द नर्तकी की कलाई पकड़ता है, परन्तु वह तुरन्त अभिमान से कलाई छुड़ा कर पुनः गाने लगती है । नन्द उसे पुनः पकड़ना चाहते हैं, परन्तु मदिरा के प्रभाव से लड़खड़ा कर अपने स्थान पर बैठ जाते हैं) मगध की अनुपम तितली, अब तू किस पुष्प की ओर उड़ना चाहती है ? अरे ! यह तो महा मन्त्री हैं । यह तुम्हारे तीक्ष्ण नेत्र-बाण को किस प्रकार सहन करेंगे ? इन्हें मगध की जटिल राजनीति से अवकाश ही कहाँ है ? मन्त्री ! क्या पीओगे विलास-नगर की रानी के हाथ से कादम्ब का एक पात्र ?

मन्त्री राक्षस:– महाराज ! निश्चय ही शुष्क राजनीति की गुत्थियाँ सुलझाते-सुलझाते मगध के महा मन्त्री का जीवन निरस-सा हो गया है, परन्तु फिर भी मगध में ऐसा कौनसा अभागा मनुष्य है जो कुसुमपुर की रानी के हाथ से कादम्ब पीने की लालसा न रखता हो ।

(नन्द नर्तकी को संकेत करते हैं और वह हँसती हुई महा मन्त्री के होठों पर पात्र लगाना ही चाहती है कि सहसा सभा-भवन में प्रतिहारी प्रवेश करता है)

प्रतिहारी:— महाराज की जय ! पञ्चनद से मगध के राजदूत लौट आए हैं। वे अन्नदाता की सेवा में उपस्थित होना चाहते हैं।

नन्द:— उसे कहो, अभी अवकाश नहीं है। तुम्हारे महाराजाधिराज आज विलास-नगर की रानी के साथ वसन्तोत्सव मना रहे हैं। स्वर्णरेख ! ला, और पिला। आज केवल कादम्ब चाहिए, कादम्ब। क्यों राक्षस, मौन क्यों हो ? आज डटकर पीओ।

राक्षस:—प्रतिहारी ! राजदूत को सम्मानपूर्वक यहाँ भेजो। मगधेश्वर ! क्या आपको स्मरण नहीं कि पर्वतेश्वर के पास हमने राजकुमारी के पाणिग्रहण का सन्देश भेजा था ? पर्वतेश्वर की दशा इस समय सोचनीय है। पञ्चनद पर शीघ्र ही यवन-आक्रमण होने की संभावना है। इस समय वह अभिमानी क्षत्रिय अपने सन्धि-प्रस्ताव को ठुकराने में असमर्थ है। प्रतिहारी ! क्या देखते हो ? राजदूत को शीघ्र भेजो।

(प्रतिहारी मस्तक नवा कर चला जाता है)

नन्दः—क्या तुम को विश्वास है कि इस बार पर्वतेश्वर हमारी बात मान लेगा ?

राक्षस.—भारतवर्ष की परिस्थिति ही ऐसी है। पर्वतेश्वर मगध से सहायता प्राप्त करने को इच्छुक है। यवनों को परास्त करने के लिए पर्वतेश्वर को विवश होकर मगध की सहायता लेनी ही पड़ेगी।

नन्दः—यदि उसने ऐसा नहीं किया..... ?

राक्षसः—इसका परिणाम उसको भोगना ही पड़ेगा। समस्त पंच नद पदाक्रान्त होगा। यवन-विजय-पताका भारतवर्ष के वक्षस्थल पर मण्डरायेगी। यवन-कोष भारतीय श्री से सुशोभित होगा। रक्तपात और अन्याय होंगे। सीमांत आर्यावर्त के पश्चिमी मण्डल सदैव के लिए अशक्त एवं निर्बल हो जाँयगे।

नन्दः—मगध का क्या होगा ?

राक्षसः—(हँसकर) मगध का क्या होगा ? मगध का भविष्य उज्ज्वल है। यवन धन के भूखे हैं, राज्य के नहीं। भारतवर्ष पर राज्य करने की इच्छा रखते हुए भी वे ऐसा नही कर सकेंगे। पञ्चनद का युद्ध अत्यन्त भयंकर

एवं भीषण होगा। यवन हतोत्साह होकर स्वदेश लौटना ही उत्तम समझेंगे। ऐसी दशा में शक्तिशाली मगध-साम्राज्य का मार्ग रोकने की क्षमता किस में होगी? मगध स्वतः ही उन्नति करेगा।

(राजदूत का प्रवेश)

राजदूतः—(महाराज नन्द के सम्मुख मस्तक झुकाकर) महाराज की जय!

राक्षसः—आओ श्वेताङ्ग! हम तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे थे। (राजदूत मन्त्री के समीप ही अपने स्थान पर बैठ जाता है) क्यों मिली सफलता? मुझे तो पहले ही विश्वास था कि राक्षस का यह तीर खाली नहीं जायगा। श्वेताङ्ग, अरे, तुम उदास क्यों हो?

राजदूतः—मन्त्रीवर, आवश्यकता से अधिक आशावादी न बनें। पर्वतेश्वर एक सच्चे क्षत्रिय हैं। यह लीजिए उनका उत्तर। (महामन्त्री के हाथ में एक खलीता सौंपता है)

नन्दः—मन्त्री, क्या इस बार भी घमण्डी पर्वतेश्वर ने मगध का तिरस्कार किया है?

राक्षसः—(उद्विग्नता से खलीता खोलकर राज-पत्र पढ़ता है)

प्रतिहारीः—अन्नदाता ! कुछ विद्यार्थी तक्ष-शिला से स्नातक होकर लौटे हैं। वे मगधेश्वर के दर्शनों की प्रतीक्षा में खड़े हैं। (नन्द राक्षस की ओर देखता है)

राक्षसः—सीमान्त की राजनीति का स्पष्ट विवरण इन विद्यार्थियों द्वारा सरलता से प्राप्त किया जा सकता है।

नन्दः—उन्हें आने दो ! मन्त्री, क्या सचमुच तक्ष-शिला नरेश ने यवनों के सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया है?

राक्षसः—तक्ष-शिला-नरेश ने केवल आत्मसमर्पण ही नहीं किया है। उसने अपना समस्त सैन्यबल एवं राज-कोष यूनानी सम्राट सिकन्दर के अर्पण कर दिया है। इस युद्ध में मगध की सहायता के बिन ……।

(वररुचि के साथ स्नातकों का प्रवेश)

स्नातकः—(सब मिलकर) महाराज नन्द की जय !

राक्षसः—अमात्य वररुचि ! इन स्नातकों की परीक्षा लें।

वररुचिः—महाराज ! जिस महान् विश्वविद्यालय में विद्या प्राप्त कर मैं स्वयं स्नातक हुआ हूँ, वहाँ के स्नातकों की परीक्षा लेना, अपने गुरुजनों, सहपाठियों एवं अखिल संस्था का अपमान करना है। इसके साथ ही साथ इन स्नातकों में मगध के गौरव

एवं तक्षशिला विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध अध्यापक विष्णु-
गुप्त भी हैं। इनकी मैं क्या परीक्षा ले सकता हूँ।

राक्षसः—विष्णुगुप्त ! चणक का पुत्र चाणक्य !!
(उन स्नातकों में से एक तेजस्वी ब्राह्मण आगे बढ़ता है)

विष्णुगुप्तः—डरो नहीं महा मन्त्री ! मैं ही चाणक्य हूँ।
(मन्त्री ब्राह्मण की ओर घूर कर देखता है)

राक्षसः—राजन् ! मगध से विद्यार्थी तक्ष-शिला विद्याध्ययन करने क्यों
जाते हैं ?

विष्णुगुप्तः—क्योंकि भारतवर्ष में तक्ष-शिला-महाविद्यालय ही आर्य-
संस्कृति का प्रतीक रह गया है।

राक्षसः—मागधी विद्यार्थियों की शिक्षा का प्रबन्ध तो मगध में भी
हो सकता है।

विष्णुगुप्तः-किन्तु, महामन्त्री ! तुम्हारी ही कृपा के कारण ऐसा नहीं
हो रहा है। मगध साम्राज्य आज तक्षशिला के सदृश्य
विश्वविद्यालय निर्माण करने में असमर्थ है। अतः विद्या-
र्थियों को विवश होकर तक्ष-शिला की शरण लेनी ही पड़ती
है। पर, हाय ! अब तक्षशिला भी पतन की ओर अग्रसर
हो रहा है।

राक्षसः—मगध को तक्ष-शिला के सदृश्य व्यर्थ का आडम्बर रचने का अवकाश कहाँ है ? मनुष्य के आचरण को शुद्ध करने के लिए केवल सद्धर्म की शिक्षा ही पर्याप्त है।

विष्णुगुप्तः—महामन्त्री ! क्या तक्षशिला विश्वविद्यालय केवल आडम्बर मात्रा है ? ऐसा महाविद्यालय जिसने कात्यायन (वररुचि की तरफ इंगित करके) जैसे कई पण्डित एव महा काव्यकार तय्यार किये हैं, क्या विडम्बना के योग्य है ? मन्त्री, केवल बौद्ध सिद्धान्तों के आधार पर मनुष्य जीवन में सफल नहीं हो सकता। गृहस्थ-धर्म-पालन एवं साम्राज्य-संचालन के लिए विशाल आर्य-संस्कृति की शरण लेना परमावश्यक है। आर्य-संस्कृति का उद्धार तक्ष-शिला महाविद्यालय की रक्षा करने से हो सकता है, इसमें अखिल भारतवर्ष का हित है।

राक्षसः—ब्राह्मण, तुम मिथ्याभाषी और घमण्डी हो।

विष्णुगुप्तः—सावधान राक्षस ! तुम सीमा से बाहर जा रहे हो। इस समय सीमान्त के मण्डलों की रक्षा करना, समूचे भारत के द्वार की रक्षा करना है। और इस गुरुतर कार्य में प्रत्येक भारतीय हाथ बँटा सकता है। ब्राह्मण मिथ्याभाषी नहीं हो सकता, बौद्ध मन्त्री। वह सत्य को प्रकट करते कभी नहीं

घबराता, चाहे वह कितना भी कटु हो। स्मरण रहे, केवल आर्य-संस्कृति ही भारत का उद्धार कर सकती है। बौद्धधर्म अब शिथिल हो गया है, उसमें विलासिता का रंग चढ़ गया है। ऐसा धर्म मागधी प्रजा के लिए घृणित है, त्याज्य है।

नन्दः——सद्धर्म की निन्दा करने वाले और अनाधिकार बोलने वाले घमण्डी ब्राह्मण, तुम कौन हो?

विष्णुगुप्तः—महाराज! मैं तक्ष-शिला से लौटा हुआ एक स्नातक हूँ, मगध साम्राज्य की प्रजा हूँ, एक आर्य हूँ और एक ब्राह्मण हूँ। प्रजा के प्रत्येक मनुष्य का यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह अपने विचारों को स्वतन्त्र रूप से प्रकट करे। ब्राह्मण राजा-प्रजा का सेवक, व्यवस्थापक एवं राष्ट्र-प्रणेता रहे हैं, उन्हीं के सिद्धान्तों के आधार पर कई राष्ट्र बने और मिट गये। बौद्ध सिद्धान्तों में वह बल कहाँ?

नन्दः——तुम बड़े प्रगल्भ दिखाई पड़ते हो। क्या तुम्हें राजकोप का भय नहीं है?

विष्णुगुप्तः—(हँसता है) राज-कोप! ब्राह्मण सत्य-भाषण करता कभी किसी से नहीं डरता, न्याय एवं राष्ट्र के हित के लिए परिष्कृत मस्तिष्क एवं ओजमयी वाणी का प्रयोग करते

हुए कभी नहीं हिचकिचाता । वह अपने स्वप्नों के संसार में स्वच्छन्द होकर विचरता है । प्रकृति उसका घर है, यह नीलाम्बर उसके घर की छत है । ऐसे स्वतन्त्र वातावरण में रहने वाला ब्राह्मण न किसी का अपमान करता है, और न किसी से डरता है । यह एक सच्चे ब्राह्मण हृदय का रहस्य है ।

राक्षसः—महाराज ! यह ब्राह्मण उसी राजद्रोही चणक का पुत्र है ।

विष्णुगुप्तः–हाँ महाराज, मैं उसी निडर जनसेवक की सन्तान हूँ, जिसकी भूमि और गोधन छीनकर मगध की निरंकुश सत्ता ने निर्वासित कर दिया ।

नन्दः—वाचाल ब्राह्मण सावधान, केवल ब्राह्मण होने के कारण ही तुम राजकोप से मुक्त नहीं हो सकते । तुम्हारा हित इसी में है कि तुम तुरन्त राजभवन का परित्याग करो ।

विष्णुगुप्तः–मैं स्वयं जा रहा हूँ, किन्तु एक बात और कह कर ।

नन्दः—क्या ?

विष्णुगुप्तः–यवनों ने उद्‌भाण्ड में पुल बना लिया है, शीघ्र ही पंच-नद पर घोर आक्रमण होगा । तक्षशिला नरेश पूर्णतया विदेशियों के हाथ की कठपुतली है । मगध की सहायता के लिए इस घोर संग्राम में पर्वतेश्वर की पराजय निश्चित

है और इसके परिणामस्वरूप मगध पर भी यवनों का भयंकर आक्रमण होगा। क्या मगध सावधान है?

राक्षसः—मगध पूर्णतया सतर्क है, किन्तु इसके लिये तुम चिन्तित क्यों?

विष्णुगुप्तः—यदि मागधी सेना ने सांस्कृतिक मतभेद एवं वैमनस्य को परित्याग कर पर्वतेश्वर की इस बार सहायता न की, तो समस्त भारतवर्ष को दासता का फल भोगना पड़ेगा।

राक्षसः—मूर्ख ब्राह्मण, पर्वतेश्वर की पराजय से ही तो मगध साम्राज्य का प्रसार होगा।

विष्णुगुप्तः—सो कैसे अदूरदर्शी मन्त्री?

राक्षसः—यह सब जानकर तुम क्या करोगे? क्या तुम शत्रु के गुप्तचर हो?

विष्णुगुप्तः—ठीक है, मैं स्वयं समझ गया। इस युद्ध में तुम मगध को तटस्थ रखकर आलसी और अकर्मण्य बनाना चाहते हो। परन्तु तुम्हारे मिथ्या स्वप्न तुम्हें धोखा देंगे। पर्वतेश्वर की पराजय और यवनों के भारत से लौटने के पश्चात् समूचे राष्ट्र में जन-जागृति एवं महान् क्रान्ति होगी, जिसमें

विष्णुगुप्तः–कात्यायन ! अब केवल पाणिनी से काम नहीं चल सकता। इस समय भारत को दृढ़ दण्डनीति एवं अर्थ-शास्त्र की आवश्यकता है। चलो वत्स चन्द्रगुप्त !

(विष्णुगुप्त और चन्द्रगुप्त दोनों प्रस्थान करते हैं)

नन्दः—अरे ! सब देखते क्या हो ? पकड़ो, वे भगे जारहे हैं।

(बात ही बात में चाणक्य और चन्द्रगुप्त चले जाते हैं और उनको पकड़ने की किसी को भी हिम्मत नहीं होती है।)

नन्दः—राक्षस, क्या वे बचकर चले गए ?

राक्षसः—मैं चाणक्य से नहीं डरता, परन्तु आश्चर्य तो यह है कि चन्द्रगुप्त भी······।

वररुचिः–विष्णुगुप्त के अपमान का प्रायश्चित्त मगध को अवश्य करना पड़ेगा। विष्णुगुप्त की प्रतिज्ञा एक सच्चे एवं दूर-दर्शी ब्राह्मण की प्रतिज्ञा है।

(नन्द नर्तकी की ओर संकेत करता है और वह पुनः नृत्य आरम्भ करती है।)

नन्दः—देखा जायगा। स्वर्णरेख, और ला एक पात्र कादम्ब·· हा ! हा ! हा !

(स्वर्णरेख महाराज नन्द को कादम्ब का पात्र भर कर पिलाती है और छूम छन···न···न की ताल और संगीत-लहरी में नन्द झूमता हुआ दिखाई देता है)

* पटाक्षेप *

शत्रु से प्रेम

तथा

(प्रेम-विजय)

पात्र-परिचय

(पुरुष पात्र)

१. महाराज त्रिभुवनजीत (कोशलाधीश)

२. धनञ्जय (कोशल का मन्त्री)

३. गृहबन्धु (मगधेश्वर)

(स्त्री पात्र)

४. मीनल देवी (मगध की राजकुमारी)

शत्रु से प्रेम

तथा

(प्रेम–विजय)

(मगध के बन्दीगृह में एक युवक धीरे-धीरे इधर-उधर टहल रहा है। कमरे में कुछ खिड़कियाँ हैं, जिनमें लोहे के लग्गे लगे हुए हैं। बाहर चारों ओर कड़ा पहरा तैनाथ है। युवक का कद लम्बा है। गौरवर्ण, विशाल स्कन्ध, लम्बी भुजाएँ आदि उसके निर्भीक एवं महापुरुष होने के द्योतक हैं। वह इधर-उधर टहलता-टहलता एक द्वार के पास रुक जाता है और कुछ बोलने लगता है)

—|—

त्रिभुवनजीत:—कैसी भयंकर रजनी थी वह ? कितनी हृदय-स्पर्शनी घटना थी? कोशलाधीश मागधी अश्वारोहियों द्वारा घेर लिया गया था। वह वास्तव में एक विरांगना

है। उसने अपनी चमकती हुई तलवार को हिलाकर कैसी वीरता से कहा था, "बन्दी करो।" मैं उस चन्द्र-मुखी के अनूठे सौन्दर्य को देखने लगा, जो उस चन्द्रिका में चमक रहा था। उसका प्रत्येक अङ्ग फड़क रहा था और उसके काले, लम्बे, घुँघराले बाल वायुमण्डल में लहरा रहे थे। मैं एक वीर नारी पर, सौन्दर्य की साक्षात प्रतिमा पर कैसे प्रहार करता? मैंने शस्त्र फेंक दिए और मेरे मुख से निकल पड़ा, "देवी, क्या अपने भ्राता गृहबन्धु को चूड़ियाँ पहिना कर रणांगण में आई हो?" मैं उस सौन्दर्य-छवि को जीवन पर्यन्त नहीं भूल सकता। उस साहसिक व्यक्तित्व ने मेरे हृदय में घर कर लिया है। यह सुन्दरी मेरे जीवन की एक सब से बड़ी समस्या बन गई है। देखना है इस कोमलाङ्गी की आत्मा में कितना बल है?

[सहसा बन्दीगृह के एक भाग में धड़ाका होता है और त्रिभुवनजीत चौंक कर उस ओर देखता है। जिस स्थान में धड़ाका हुआ था, वहाँ ही आँगन में एक गुप्त द्वार प्रकट होता है और उसमें से एक अधेड़ पुरुष निकल कर सम्मुख आता है।]

धनञ्जयः—कोशलाधीश की जय !

त्रिभुवनजीतः—मगध के बन्दीगृह में, अर्द्ध रात्रि के समय, त्रिभुवन-जीत का यशोगान करने वाले तुम कौन ?

धनञ्जयः—महाराज ! यह तो आपही का सेवक है !

त्रिभुवनजीतः— कौन मन्त्री ! कविवर धनञ्जय !!

धनञ्जयः—हाँ महाराज !

त्रिभुवनजीतः—कवि तुम यहाँ कैसे ?

धनञ्जयः—राजेन्द्र ! विलम्ब करने से सर्वस्व नष्ट हो सकता है।

त्रिभुवनजीतः—यह तो मैं भी समझता हूँ मन्त्री, परन्तु........।

धनञ्जयः—यह बहुत बड़ी कहानी है, मुक्ति के उपरान्त स्वतः ही सब कुछ प्रकट होगा। वे सब हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। शीघ्रता करिए ?

त्रिभुवनजीतः—वे सब कौन ?

धनञ्जयः—समय आने पर सब कुछ प्रकट होगा।

त्रिभुवनजीतः—नहीं मन्त्री ! त्रिभुवनजीत यहाँ से कायरों की तरह भागने में असमर्थ है।

धनञ्जयः—यह क्या कह रहे हैं ? सुअवसर से लाभ उठाना विद्वानों का काम है। आप तो विद्वानों में शिरोमणि हैं।

किया है, किन्तु घाव अभी गहरा नहीं बैठा है। मन्त्री, त्रिभुवनजीत आज नहीं जा सकता, वह कल चलेगा, और उसके साथ मगध का एक और प्रसिद्ध व्यक्तित्व होगा।

धनञ्जयः–महाराज!

त्रिभुवनजीतः–हाँ मन्त्री, जब तुम लोग पत्थर की दीवारों में मार्ग खोल सकते हो, तो क्या तुम्हारा राजा पत्थर को भी नहीं पिघला सकता?

धनञ्जयः–महाराज! मुझे महान् हर्ष है, परन्तु एक शंका······।

त्रिभुवन०–शंका?

धनञ्जयः–महाराज।

त्रिभुवनः–चतुर मन्त्री, तुम्हारा राजा इतना कायर नहीं है, न उसको मृत्यु का ही भय है। मेरी मृत्यु भी एक उज्ज्वल विजय ही है। (मुस्करा कर) हाँ! यह तो बताओ क्या तुमने भी कोई पक्षी जाल में फँसाया है?

(मन्त्री हँसता है)

त्रिभुवन०–अच्छा, अब जाओ मन्त्री। कल फिर इसी समय, यह देखो वह आलोक······।

धनञ्जयः–जाता हूँ महाराज। भगवान् आपकी रक्षा करें।

(गुप्त द्वार में प्रवेश करता है और साधारण धड़ाके के साथ द्वार लुप्त होकर आँगन में परिणत हो जाता है। त्रिभुवनजीत बन्दीगृह में इधर-उधर टहलता हुआ अपने आप ही बोलता है)

त्रिभुवन०--मीनल ! एक असाधारण तपस्विनी है, एक अखण्ड ब्रह्मचारिणी है और है मगध का गौरव। उसी के अथक परिश्रम से आज कोशलाधीश मगध में बन्दी है, उसी की वीरता एवं तपस्या के फलस्वरूप कायर मगधेश्वर सात बार परास्त होकर आठवीं बार विजयी हुआ है। गृह-बन्धु तो नाममात्र का राजा है, मीनल ही मगध की वास्तव में सत्ता है। वह एक विचित्र नारी है। क्या ऐसे व्यक्तित्व को त्रिभुवनजीत परास्त कर सकता है ? यह सच है मीनलदेवी एक वीराङ्गना है, किन्तु वह एक नारी है। संभव है कि उसका हृदय साधारण स्त्रियों से कुछ कठोर हो, परन्तु जब शुष्क नारी-हृदय में प्रेमामृत की वर्षा होती है, तो वह लहलहा उठता है। क्यों न मीनल के मरुस्थल-से हृदय में प्रेमाङ्कुर उत्पन्न हो ?

(बन्दीगृह के बाहर किसी के पैरों की आहट सुनाई पड़ती है। एकाएक बन्दीगृह का द्वार खुलता है। दो उल्काधारियों के मध्य एक राजकुमारी खड़ी है, जिसके

काले लम्बे बाल कमर तक बिखर रहे हैं और उसके मुख से अद्भुत तेज झलक रहा है।]

मीनलः–(उल्काधारियों की ओर संकेत करके) तुम जाओ, प्रहरी ! द्वार बन्द करो। सावधान, कोई प्रवेश न करे।

(प्रहरी द्वार बन्द करता है, उल्काधारी जाते हैं और राजकुमारी त्रिभुवनजीत के सम्मुख चली जाती है। त्रिभुवनजीत विचारमग्न से दिखाई पड़ते हैं।)

मीनलः–कोशलाधिपति को इस प्रकार विचार करते कितने दिन व्यतीत होगये ?

त्रिभुवनजीतः–एक कारागृह में बन्दी की बाह्य स्वतन्त्रता का अपहरण किया जा सकता है, उसके मस्तिष्क एवं आत्मा का नहीं।

मीनलः–मैं आज तुमको अन्तिम चेतावनी देने आई हूँ।

त्रिभुवनजीतः–कोशल के महाराज को एक सुन्दर राजकुमारी अन्तिम चेतावनी देने आई है। हा...हा...हा...(परिहास)

मीनलः–(क्रुद्ध होकर) घमण्डी पुरुष ! तुम मगध के एक साधारण बन्दी हो, पराजय के अभिशाप हो।

त्रिभुवनजीतः—बहादुरों के लिये विजय और पराजय दोनों ही समान हैं सुन्दरी ! और आप इस साधारण बन्दी के अतुल प्रभाव के फलस्वरूप क्या मगध की राजकुमारी को विवश होकर कारागृह में न आना पड़ा ? आओ ! आज त्रिभुवनजीत अपने जीवन में पहली बार नारी का स्वागत करता है।

(स्पर्श करने की चेष्टा करता है)

मीनलः—दूर हटो ! एक बाल ब्रह्मचारिणी को स्पर्श करते तुम्हें लज्जा नहीं आती ?

त्रिभुवन०—लज्जा, कौशल के वीर अपनी प्रेमिका से सम्भाषण करते कभी लजाते हैं सुन्दरी ?

मीनलः—तुम कितने पतित हो ! तुम्हारे प्रत्येक शब्दों से पाप टपक रहा है।

त्रिभुवन०—मीनल ! त्रिभुवनजीत का हृदय स्वतः ही कह रहा है, इसमें मेरा क्या दोष ?

मीनलः—जानते हो तुम्हारी इस धृष्टता का क्या परिणाम हो सकता है।

त्रिभुवन०—सच्चा प्रेमी परिणाम को नहीं देखता, राजकुमारी !

मीनलः—तो अपने आपको दीवारों में चुनवाने के लिये प्रस्तुत् कर लो।

मीनलः—मगध के स्वाभिमान की रक्षा करना और अपने सच्चे प्रेमी की पूजा करना, जो एक शत्रु है, बड़ी कठिन समस्या है। शिकारी शिकार खेलने चला था, किन्तु अब स्वयं शिकार हो रहा है।

त्रिभुवन०-इसमें तुम्हारा क्या दोष, नारी-हृदय ही ऐसा है। इसका रहस्य मानव-हृदय से है। हृदय की सम्मोहन शक्ति के प्रभाव से कट्टर शत्रु भी परस्पर प्रेमी और मित्र बन जाते हैं, जिसके जीवित उदाहरण हम हो सकते हैं।

मीनलः—क्या मगध अब कोशल का शत्रु नहीं है?

त्रिभुवन०—नहीं। मगध की प्रधान सत्ता कोशलाधीश के रक्त से अपने हाथ रङ्गना नहीं चाहती। शत्रुता और प्रेम कैसा अद्भुत सामञ्जस्य है। यदि मानव शत्रु से प्रेम कर सकता है, तो इसके लिए उपाय भी अवश्य है।

मीनलः—वे क्या?

त्रिभुवनपालः—तुम डरोगी तो नहीं?

मीनलः—क्यों?

त्रिभुवन०—मृत्युञ्जय का वध तुम्हें करना पड़ेगा और शीघ्र ही मगध की सत्ता पर हमारा शासन होगा।

मीनलः— क्रूर हृदय ! असंभव। मीनल के शरीर में प्राण रहते मागधी ध्वजा का अपमान न होगा। क्या संसार में ऐसी कोई बहिन है जो केवल अपने सुखों के लिए अपने सहोदर की हत्या करे ? राष्ट्रद्रोह करने से पहले मीनल अपने प्राण ·······।

त्रिभुवनजीतः—शान्त ! क्षुब्ध न हो। क्या एक स्त्री अपने सहोदर के साम्राज्य के लिए अपने सुख और प्रेम की हत्या कर सकती है ?

मीनलः— मीनल के सम्मुख एक कठिन समस्या है— प्रेम और कर्तव्य। मेरा शुद्ध हृदय दोनों को समान रूप से चाहता है। मीनल एक महान् शत्रु से प्रेम करती है और उससे अपने स्वदेश के स्वाभिमान की रक्षा भी चाहती है। दो विरोधी तत्त्वों का सामञ्जस्य करना एक असाधारण कार्य है।

त्रिभुवन०—मनुष्य सब कुछ सोच सकता है। आज इसी समय हम दोनों को कोशल के लिए यात्रा करनी होगी।

मीनलः— कैसे ?

(त्रिभुवनजीत उङ्गली के संकेत से गुप्त द्वार बताता है)

मीनलः—ओह ! (चकित होकर) क्या इससे मगध का अपमान

होगा ? (सोचती है) मैं प्रस्तुत हूं, परन्तु आज नहीं कल।

त्रिभुवन०—तो, आओ, रानी! आज त्रिभुवनजीत की सब से बड़ी विजय का दिन है, हम राजा-रानी दोनों........।

(त्रिभुवनजीत मीनल के कंधे पर अपना हाथ डालते हैं—मगधेश्वर गृहबन्धु का अपने एक अंगरक्षक के साथ सहसा प्रवेश)

गृहबन्धुः—मगध के बन्दीगृह में क्या कोशल के राजप्रसादों के स्वप्न देख रहे हो ?

त्रिभुवनः—त्रिभुवनजीत केवल स्वप्नों के संसार में ही नहीं विचरता, वह जो कुछ देखता है प्रत्यक्ष है।

गृहबन्धुः—यह कौन ? राजकुमारी मीनल देवी और यहां !

मीनलः—भ्राता ! भ्राता !! एक बार पुनः मगध के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा जा चुका है। कोशलाधीश कुछ ही क्षणों में मुक्त होने वाले हैं। मगध का पतन अनिवार्य है।

गृहबन्धुः—कोशलाधीश कुछ ही क्षणोंमें मुक्त होने वाले हैं और तुम्हारे कहे मगध का पतन अनिवार्य है, यह तुम क्या कह रही हो भगिनि ?

खुल जाता है। गृहवन्धु तथा त्रिभुवनजीत दोनों आश्चर्य से मीनल की ओर देखते हैं) यह वह रहस्य है जिसे कोशलाधीश अच्छी तरह जानते हैं।

गृहवन्धुः—शूरसेन ! त्रिभुवनजीत को बाँधलो। आज मगध अपने चिरशत्रु के भय से सदैव के लिए मुक्त हो जायगा। बहिन, तुमने एकबार फिर मगध की लाज रखली।

मीनलः—ठहरो ! मैं अपराधिनी हूँ; इस षड्यन्त्र में मेरा भी हाथ है, मुझे बन्दी करो। यदि मगध एवं स्वयं का कल्याण चाहते हो, तो महाराज त्रिभुवनजीत के संग मुझे भी दण्ड मिले। मैंने राजद्रोह किया है।

गृहवन्धुः—कैसा राजद्रोह ? राजकुमारी ने तो पुनः मगध का उपकार किया है, इसका तुम्हें अवश्य पुरस्कार मिलेगा।

मीनलः—भोले भाई, मैंने सचमुच मगध के विरुद्ध विद्रोह किया है।

गृहवन्धुः—जिस मीनल ने माता के सदृश्य मगध का पोषण किया है, जिसकी प्रेरणा से मगध का पराजित राजा बलवान शत्रु पर अन्त में विजयी बना, वही मीनल मगध के विरुद्ध विप्लव खड़ा करती है, असंभव।

त्रिभुवनजीतः—मनुष्य के लिए संसार में कोई भी वस्तु असंभव

होगा ! (सोचती है) मैं प्रस्तुत हूँ, परन्तु आज नहीं कल ।

त्रिभुवन०—तो, आओ, रानी ! आज त्रिभुवनजीत की सब से बड़ी विजय का दिन है, हम राजा-रानी दोनों……… ।

(त्रिभुवनजीत मीनल के कंधे पर अपना हाथ डालते हैं—मगधेश्वर गृहदन्तु का अपने एक अंगरक्षक के साथ सहसा प्रवेश)

गृहदन्तु:—मगध के बन्दीगृह में क्या कोशल के राजप्रासादों के स्वप्न देख रहे हो ?

त्रिभुवन:—त्रिभुवनजीत केवल स्वप्नों के संसार में ही नहीं विचरता, वह जो कुछ देखता है प्रत्यक्ष है ।

गृहदन्तु:—यह कौन ? राजकुमारी मीनल देवी और यहाँ !

मीनल:—आहा ! आहा !! एक बार पुनः मगध के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा जा चुका है । कोशलाधीश कुद्ध के चरणों में मुक्त होने वाले हैं । मगध का पतन अनिवार्य है ।

गृहदन्तु:—कोशलाधीश कुद्ध की चरणों में मुक्त होने वाले हैं और तुम्हारे कहे मगध का पतन अनिवार्य है, यह तुम क्या कह रही हो मीनल !

त्रिभुवनजीतः—कोशल की सफल राजनीति को क्या मगध के सम्मुख पुनः पराजय स्वीकार करनी पड़ेगी ?

मीनलः—विजय-पराजय का प्रश्न अब कहाँ रहा ! हमें तो एक नया संसार बसाना है। (त्रिभुवनजीत मुस्कराते हैं, गृहबन्धु और शूरसेन वहां से प्रस्थान करते हैं, मीनल त्रिभुवन-जीत के चरण पकड़ती है और त्रिभुवनजीत उसे हृदय से लगा लेते हैं।)

* पटाक्षेप *

नहीं है, साहस चाहिए। कोशलाधीश मगध का एक बन्दी बन सकता है, तो यही असंभव क्यों?

गृहबन्धुः—कोशल पर मगध की विजय तो स्वाभाविक थी, परन्तु ...।

मीनलः—(नेत्रों में आँसू भर कर) परन्तु, भाई, कोशलाधीश मेरे प्राणेश्वर हैं।

गृहबन्धुः—मीनल! तुम यह क्या कह रही हो? कोशल और मगध में प्राचीन शत्रुता है।

मीनलः—भाई, मैं सच कह रही हूँ। मगध के स्वाभिमान की रक्षा का केवल एक ही उपाय है — कोशलाधीश के साथ मुझे भी मृत्यु दण्ड मिले।

गृहबन्धुः—कल्याणी! अब मैं समझ गया, मेरी आँखें खुल गईं। तुमने मगध और कोशल दोनों की लाज रख ली। मगध अपनी निर्माणी को मृत्यु-दण्ड दे, मेरी लज्जा की बात है। सब मनुष्य को शत्रुता करने का अधिकार है,

त्रिभुवनजीतः—कोशल की सफल राजनीति को क्या मगध के सम्मुख पुनः पराजय स्वीकार करनी पड़ेगी ?

मीनलः—विजय-पराजय का प्रश्न अब कहाँ रहा ? हमें तो एक नया संसार बसाना है। (त्रिभुवनजीत मुस्कराते हैं, गृहबन्धु और शूरसेन वहाँ से प्रस्थान करते हैं, मीनल त्रिभुवन-जीत के चरण पकड़ती है और त्रिभुवनजीत उसे हृदय से लगा लेते हैं।)

* पटाक्षेप *

पात्र-परिचय

पुरुष पात्र

१. विशालदेव (एक ब्राह्मण युवक)
२. गोविन्द (राजा)
३. पुरोहित (आचार्य)
४. अमात्य
५. इन्द्र

स्त्री पात्र

६. [illegible] (विशालदेव की धर्मपत्नी)

पर्जन्य-यज्ञ

प्रथम दृश्य

स्थान—आश्रम । एक युवक प्रातःकर्म एवं पूजनादि की सामग्री लिये कुशासन पर बैठा है। वह पर्ण-कुटी के द्वार की ओर देख रहा है। उसके मुख पर आतुरता और झुँझलाहट के चिन्ह दृष्टिगत हो रहे हैं।

(एक युवती का प्रवेश)

विशालदेव:—देवी, इतना विलम्ब ...... ?

अम्बिका:—आर्यपुत्र ! विलम्ब ? हाँ, विलम्ब हो तो। किन्तु फिर भी मैं असफल रही। (गहरी श्वास छोड़ती हुई जलपात्र को रखती है)

विशालदेव:—रिक्त पात्र ही ले आई ?

विशालदेवः–भगवान पुरन्दर ! क्या यह मेघ कुछ नहीं सुनते, न तर्पण को जल न बरसाओगे इन्द्र ? आर्यावर्त पर यह अनावृष्टि क्यों ? अस्तु आपकी इच्छा । किन्तु आर्य शोणित-तर्पण करके भी अपना धर्म-कर्तव्य-पालन करेंगे । मैं अपने हृदय के रक्त से तर्पण करूँगा, यज्ञ करूँगा । यह परशु ·· और (अपने परशु से रक्त निकालने की चेष्टा करता है और युवती रोकती है)

अम्बिका–इतना क्षोभ ? भावुक वीर, शान्त ।

विशालदेवः–धर्म-पथ में विघ्न न बनो, छोड़ो ।

अम्बिकाः–ठहरो वीर ! आज आपकी वीर पत्नी आप से धर्म-युद्ध करेगी । उस दिन, जिस दिन मैंने स्वयं को आपके चरणों पर समर्पित कर दिया था, मेरे पिता ने कन्यादान किया था. भगवान हुताशन साक्षी हैं,

क्या सङ्कल्प किया था आपने ?

विशालदेवः–हाँ……स्मरण है……तुम अर्धाङ्गिनी……… प्रत्येक कार्य के पूर्व तुम्हारा मत ग्राह्य ……यज्ञ में तुम सहधर्मिणी ।

अम्बिकाः–प्राणेश ! साधु, तो क्या आप ही अकेले इस परम यज्ञ……………………………अपूर्व पुण्य कार्य के भागी होंगे ? इतनी अनुदारता ! इतनी उपेक्षा ? आर्य रमणी ऐसे पुण्य-कार्यों से वञ्चित रहे और पति उसकी प्रार्थना तक न सुने ! कैसी विडम्बना है ……।

विशालदेवः–देवी, भूल मानव का साधारण धर्म है । मैं क्षमा-वाञ्छी हूँ । निस्सन्देह तुमने मुझे एक भयङ्कर धर्म-सङ्कट से बचाया है । तुम धन्य हो । (सहसा पथ पर तूर्यनाद-पूर्वक राज्यघोषणा सुनाई देती है)

दूतः——श्री श्री परमोदारप्रजावत्सल महाराज गोपेन्द्र के राज्य-भवनों में देशव्यापिनी दुर्भिक्षजन्य परिस्थितियों का अध्ययन करने और उनके निवारणार्थ प्रयत्न ढूँढ़ निकालने के लिए एक सभा होगी, एतदर्थ समस्त आर्यजनों को आमन्त्रित किया जाता है कि वे निश्चित समय पर उपस्थित होकर महाराज का आह्वान स्वीकृत करें । महाराज की जय !

विशालदेव:—अच्छा, तो तुम मुझे क्षमा कर दोगी ?

अम्बिका:—मैं तो आपकी पदचारिणी हूं। क्षमा करने का मुझे क्या अधिकार। सभा का समय आ पहुंचा। चलिए देखें वहां क्या निश्चय होता है ? (पट-परिवर्तन)

द्वितीय दृश्य

(राज-भवन)

(छत्र के नीचे स्वर्णासन। एक ओर स्त्रीवर्ग दूसरी ओर पुरुष-समाज एकत्रित है। राज-सिंहासन के सम्मुख पुरोहित, वन्दिजनादि खड़े प्रतीक्षा कर रहे हैं। महाराज गोपेन्द्र राज-सभा में प्रवेश करते हैं और उनके पीछे चामरधारी, मयूर-पंखधारी और निशान-धारी आते हैं और तूर्यनाद होता है। सम्पूर्ण सभा खड़ी हो जाती है ब्राह्मणों वा स्वस्त्यन गान और राजा हाथ जोड़ कर अपने सिंहासन के पास खड़े हो जाते हैं।)

(स्वस्त्ययन गान)

ब्राह्मणवर्गः—चिरजीवें गोपेन्द्र

रत्नाकर से उठ समीर शुभ,
जलकण का आह्वान करें
विटप वल्लरी ले ले चामर,
भूपति का सम्मान करें।
जयः जयः जयः भूपेन्द्र ।

[सब अपने-अपने स्थान पर पुनः बैठ जाते हैं और कुछ ही क्षणों में राजा अपने स्थान से उठकर बोलते हैं]

गोपेन्द्रः—राष्ट्र प्राण प्रजा के नेताओं। देवियों। आप जैसे प्रजा-प्रवरों को प्राप्त कर हमारा राष्ट्र गर्व करता है। इस दुर्भिक्ष-मयी-वेला में भी धैर्य से, वीर्य से उस अमृत तुल्य वारि से राज्याभिषेक की आकांक्षा रखने वाले वीरों, तुम मानव नहीं अपितु देव हो। मेरी अभिलाशा है तुम अपने सङ्कल्प में सफल हो। आज आर्यावर्त की वे सुन्दर सुन्दर लताएँ विटपों से छिन्न होकर धूलि में मिल रही हैं। सारी औषधियाँ, वनस्पतियाँ नष्ट प्रायः हो चुकी हैं। मूक प्राणी भूख-तृषार्त शान्तिदा मृत्य की शरण ले रहे हैं। भ्रमर निस्पन्द हैं, कमल उन्मूलित। क्या यह सब सह्य है ?

सब:—नहीं। कभी नहीं!

गोपेन्द्र:—तो आज प्रतिज्ञा करलो कि हम सब मिलकर भगवान
पुरन्दर को प्रसन्न किये बिना शान्ति से नहीं बैठेंगे।

सब:—नहीं बैठेंगे, नहीं बैठेंगे।

गोपेन्द्र:-मैं पुरोहितवर्ग से प्रार्थना करता हूं कि वह देवेन्द्र को
प्रसन्न करने का सुगम यत्न आयोजित करें।

पुरोहित:-महाराज! मैं पुरोहित वर्ग के प्रतिनिधित्वेन आप
लोगों के सम्मुख पर्जन्य-प्रसादार्थ दो प्रस्ताव पेश करता
हूँ। प्रथम हम इन्द्रस्तवन करें अथवा एक महान्
अध्वर की योजना। आप लोगों को कौनसा मार्ग
श्रेष्ठतर प्रतीत होता है?

एक सभासद:-आचार्य द्वारा प्रदर्शित द्वितीय मार्ग ही श्रेष्ठतर
और ग्राह्य है।

गोपेन्द्र:--क्यों अमात्य वर?

आमात्य-मैं स्वयं भी इसी का अनुमोदन करूँगा। क्योंकि यज्ञ
शीघ्रतम सिद्धिदायक होगा और स्तवन विलम्ब से...।

गोपेन्द्र:--तो सामूहिक यज्ञ होना निश्चित है।

पुरोहित—यथाज्ञा। जनता की ओर इस यज्ञ की भूमिका में मैं
सम्यक स्पष्ट कर दूं कि यह यज्ञ एक असाधारण यज्ञ

होगा। एक महान् और अपूर्व पर्जन्य-यज्ञ होगा। जिसमें प्रत्येक आर्य का धर्म होगा कि यावत् भगवान् इन्द्र स्वयं साक्षात् न हों तावत् हम यज्ञ स्थिर रक्खेंगे और हव्य समाप्ति पर यदि अवसर आवे तो हम स्वयं को भी बलिदान कर देंगे, स्वयं को आहुति चढ़ा देंगे।

सब:— साधु ! साधु ! हम सब उद्यत हैं।

गोपेन्द्र:—आमात्य जाइये / दासों को लेकर यज्ञ-सामग्री एकत्रित कराइये।

आमात्य:-हम सब एक पवित्र लक्ष्य की ओर स्थिर प्रज्ञ होकर चल दिए हैं। कल प्रभातवेला में, शुभ पुष्य-नक्षत्र में यह परम यज्ञ प्रारम्भ होगा। आज का सभा-कार्य समाप्त। "महाराज गोपेन्द्र की जय"।

❀ पट-परिवर्तन ❀

❀ तृतीय दृश्य ❀

[समय प्रातः काल। स्थान—विशालदेव का आश्रम। विशालदेव ध्यानामग्न हैं। समीप ही पूजन की सामग्री पड़ी हुई है। अम्बिका एक पुष्पों का हार बना रही है जो प्रायः समाप्त हो चुका है। युवक नेत्र खोलता है और उठ खड़ा हो जाता है]

लिए विदेश गये हैं। राज-यज्ञशाला में शाकल्य समाप्त हो चुका है।

गोपेन्द्रः—यज्ञशाला में शाकल्य समाप्त हो चुका ? (आश्चर्य-प्रदर्शन) ओह। अभिशप्त भाग्य। कौन जाने क्या भावी है !

आचार्य:-विघ्न आने पर शोक ? राजन् परीक्षा विघ्नमयी ही होती है। परीक्षा में सफल होना सहज नहीं। इसके लिये महान् बलिदान और त्याग की आवश्यकता है। विघ्न ही तो हमारे धैर्य, उत्साह और आत्मबल के हेतु हैं। फिर यह शोक क्यों ?

गोपेन्द्रः—आचार्य ! परीक्षा की भी कोई सीमा होती है। पूर्ण-पक्ष अविछिन्न यज्ञ करते हुए समाप्त हो चला है, किन्तु सब निष्फल।

आचार्यः-भूपते ! विचलित न होइये। कर्म पर विश्वास रखिये। आज पूर्णाहुति का अन्तिम दिन है। भगवान् भास्कर के अस्ताचलारूढ़ होने से पूर्व ही इन्द्रदेव प्रकट होंगे। मैं समस्त आर्यकुल की ओर से प्रार्थना करूँगा कि सूर्यदेव भगवान् पुरन्दरदेव के प्रकट होने पर्यन्त अस्त न हों। (सभा में सन्नाटा छा जाता है) यदि

सूर्यास्त के पूर्व पुरन्दर प्रकट न हुए तो हम अपने आप को यज्ञाहुत कर देंगे।

उपस्थित गणों। सूर्यास्त में अब विलम्ब नहीं है। हमें अब अपना कर्त्तव्य निश्चित करना पड़ेगा। क्या आप सब लोग इस बलिकर्म में भाग लेंगे? (सन्नाटा) शुभ-कार्य में यह असंगत मौन क्यों? क्या हमारा सब परिश्रम व्यर्थ हो जायगा? ओह। कैसी भयङ्कर क्लीवता है। अस्तु। मैं अन्तिम बार पूछ लेना चाहता हूँ कि कौन इस कार्य में स्वयं को अपने देश एवं राष्ट्र के लिए अर्पण करना चाहता है।

(ब्राह्मण मण्डली में से एक युवक चुप-चाप खड़ा हो जाता है)

विशाल०:-यह ब्राह्मण इस कार्य के लिए प्रस्तुत है, आचार्य!
(यज्ञ-स्तम्भ के पास नतमस्तक होकर खड़ा हो जाता है। चारों ओर से धन्य-धन्य की ध्वनि सुनाई देती है)

आचार्य:-आर्य रमणी का सच्चा लाल यही ब्राह्मण युवक है। आर्यों का औरस पुत्र कहलाने का श्रेय सर्व प्रथम इसे ही है। देशहितार्थ प्राणाहुत करने वाले वीर तेरी जय हो!

गोपेन्द्रः–आचार्य, जरा ठहरिये। पहिले मैं स्वयं को......

आचार्यः–आर्यकुल-संरक्षक, अभ्युदय एवं लोक-कल्याण के श्रेय का प्रथम अधिकारी एवं ईश्वरत्व इसी महाशय को दिया जावेगा। परं पद पाने का सौभाग्य पहिले इसे है, तत्पश्चात किसी अन्य को।

(राजा अपने स्थान पर बैठता है)

आचार्यः–बैठ क्यों गये राजन्? इस देवता का यथोपचार अर्चन कीजिए।

(राजा पूजन करता है और सब लोग कुतुहल से उस ओर देखने लगते हैं)

आचार्यः–राजन्! विलम्ब के लिये समय नहीं है। बलिदान हो, जिसके फलस्वरूप यज्ञकुण्ड में से छोटे-छोटे स्फुलिङ्ग उड़-उड़ कर सन्ध्या की लालिमा में आर्य-गौरव की लालिमा को मिलाकर उसकी सौन्दर्य-श्री को द्विगुणित कर दे।

भगवान् भास्कर में भी इसी वीर की प्रतिभा प्रवेश कर उसकी रश्मिमाला को अधिक स्वर्णिम बना देगी, वह अखिल जगत् की कान्ति होगी। यह वीर अमर होगा! सर्वव्यापी होगा। राजन्, विलम्ब न हो। शस्त्र.........।

पात्र-परिचय

१—कौत्स (वरतन्तु ऋषि का शिष्य)

२—वरतन्तु ऋषि

३—रघु (अयोध्या के महाराज)

४—कोषाध्यक्ष

५—प्रतिहारी

गुरु-दक्षिणा

वरतन्तु ऋषि का आश्रम—

[एक छोटी सी पर्णकुटी में वरतन्तु ऋषि मृगछाला पर आसीन हैं। समीप ही विद्यार्थी उच्च स्वर से वेद पाठ कर रहे हैं। स्वयं महर्षि एक मृग-शावक को दूध पिला रहे हैं। आश्रम के बाहर एक ओर झरना बह रहा है, जिसके किनारे वृक्षादि और तुलसी के बिड़ले सुगन्धित पवन से हिल रहे हैं। झरने में कामधेनु के सदृश्य गौएँ अपने बछड़ों के संग जल पी रही हैं।]

कौत्स—(ऋषि के सम्मुख हाथ जोड़े झुक कर खड़े हैं) गुरुदेव, कुछ तो शिष्य का उपहार ग्रहण कीजिए। मैंने आप से विद्या प्राप्त की है और इसी आश्रम में रह कर आज चौदह विद्याओं में पारंगत हुआ हूं। गुरुवर्य! इस जीवन में मैं कदापि आपके ऋण से उऋण नहीं हो सकता।

वरतन्तु:—(शिष्य की ओर देखकर) वत्स! तेरी गुरुभक्ति से मैं सन्तुष्ट हूँ, तू अद्वितीय शिष्य है। मैं तेरे सेवोपहार के समक्ष संसार की समस्त वस्तुओं को तुच्छ समझता हूँ, तेरी सेवा-निष्ठा धन्यवादार्ह है। जाओ! अब गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर अपना कर्तव्य-पालन करो।

(कौत्स उदास होकर मौन धारण करते हैं। उनके नेत्रों से कुछ उद्विग्नता और झुँझलाहट टपकती है। फिर हाथ जोड़ कर गुरु से प्रार्थना करते हैं)

कौत्स—क्षमार्थी हूँ आचार्य! मैं नहीं जाऊँगा। जाने के लिए पैर बढ़ाता हूँ किन्तु बढ़ाया नहीं जाता, जाने की चेष्टा करता हूँ. किन्तु हृदय इन चरणक-मलों से पृथक् होना नहीं चाहता। मृगशावक, पौधे, कामधेनु आदि क्या मुझे जाने देंगे? यह नन्दी तो डकरा-डकरा कर मर जायगा और फिर गुरु को यथोचित भेंट दिये बिना कैसे जाऊँ?

वरतन्तु--(हँसकर) बालक है रे कौत्स ! अभी तेरी बालहठ नहीं गई, तुझे कब ज्ञान आयेगा ? तुझे मैं प्रसन्नता-पूर्वक हृदय से विदा करता हूँ। यदि तू गृहस्थाश्रम में भी ऐसा ही कर्तव्यपरायण रहा तो मैं सब कुछ पालूँगा।

कौत्स---किन्तु आचार्य, मुझे तो इससे संतोष नहीं, मैं इसी समय श्री मुख से सेवाज्ञा सुनना चाहता हूँ। मेरी प्रार्थना श्रव्य है। मैं आज आपकी कृपा से सब कुछ करने योग्य हूँ।

वरतन्तु-(चिढ़कर) सब कुछ कर सकता है ? कौत्स, आज यह प्रथमावसर है जब कि तेरे मुँह से गर्वसूचक शब्द सुन रहा हूँ। ब्रह्मचारी को क्या यह अभिमान शोभित करता है ? मेरी आज्ञा की अवहेलना कर तू मेरा अपमान कर रहा है। यह अहमत्व ! कैसी विडम्बना है !

कौत्स—आचर्या, यह अपमान नहीं अनुरोध है, प्रार्थना है, स्वाभिमान की रक्षा है। कहिए। इसे कलुषित कैसे करूँ ?

वरतन्तु--अस्तु। तो·········तू मेरी सेवा करना चाहता है, मेरे परिश्रम का मूल्य चुकाना चाहता है ? यही न !

कौत्स——नहीं, गुरुदेव, यह शरीर तो अन्तिम बार इन चरणों की सेवा करना चाहता है।

वरतन्तु—(कुछ गम्भीर होकर) वत्स ! तू अब भी मेरी सम्मति मानजा अन्यथा तुझे स्वयं अपनी भूल पर पश्चाताप करना होगा, आपत्तियां उठानी पड़ेंगी।

कौत्स——मेरा यह तुच्छ शरीर सब कुछ सहन करेगा। आचार्य के अमोघ आशीर्वाद के समक्ष सांसारिक विपत्तियाँ तो तृण के सदृश्य हैं। चाहे सूर्य शीतल हो जाय, चाहे चन्द्रमा धधकने लगे, किन्तु मैं, नहीं, नहीं, मैं तो क्या सक्ता हूं, आपका यह कृपापात्र गुरु को अवश्य प्रसन्न करेगा।

वरतन्तु—अच्छा ! ठीक है (कुछ रुक कर) तो देख हठी बालक ! मैंने तुझे चौदह विद्याओं में पारङ्गत किया है। अतः मेरी आज्ञा है-इसी के क्रमानुसार मेरी भेंट १४ करोड़ स्वर्ण मुद्राएं होंगी।

कौत्स—(झुककर) आचार्य अवश्य, नमस्कार !
यदि इस दास पर सदैव की भाँति गुरुदेव की कृपा रहेगी, तो आपके आशीर्वाद के फलस्वरूप मैं आचार्य को अवश्य उपहार लाकर भेंट करूँगा।

वरतन्तु—दीर्घायु हो पुत्र ! तेरी आशाएँ सफल हों, कर्म-क्षेत्र में तू विजयी हो और तुझे मैं तेरी अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण देखूँ ।

(प्रस्थान)

❀ द्वितीय दृश्य ❀

(अयोध्या के महाराज रघु अपने प्रासाद में एक साधारण आसन पर आसीन हैं। माला हाथ में है और ध्यानामग्न हैं। उनके समीप न कोई दरबारी है, न कोई ऐश्वर्य की वस्तु। भजन सुनकर सहसा नेत्र खोलते हैं और साधारण-से वर्तन में आवश्यक पूजा का सामान लेकर कौत्स का स्वागत करने बढ़ते हैं)

(कौत्स का गाते हुए प्रवेश)

कौत्स— जग-जीवन है आशा मानव !
दुःख-सुखों से क्यों घबराना ?
विघ्न गणों से क्या डर जाना ?
आशा और निराशाओं मे,
मत खो तू अभिलाषा ।

रघु——स्वागतम् ! श्रुतपारदर्शी, प्रणाम !

कौत्स—राजन् ! सुखी हो, तुम्हारा यश बढ़े। (राजा पैर धोकर कौत्स को आसन पर बिठाते हैं और चरणामृत पान करते हुए कहते हैं—)

रघु—आह ! आज यह मेरा निवासस्थान तो स्वर्ग को भी लज्जित कर रहा है। मेरा जैसा धन्यभाग्य संसार में इतर कौन होगा ? धन्य मैं, धन्य मेरा गृह जो आज कौत्स जैसे ब्रह्मचारी का पूजन इन हाथों से कर रहा हूँ। निस्सन्देह यह कोई मेरे पूर्व जन्म के पुण्य का फल है। (दण्डवत करके आसन पर बैठते हैं और कौत्स मिट्टी के पात्रादि देख कर एक क्षण में योगबल से सब स्थिति जान जाते हैं)

कुशाग्र बुद्धे ! मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ? मैं तुच्छ हूँ, आपने यहाँ पधार कर दास पर बड़ा अनुग्रह किया है।

कौत्स—राजन् ! आपका अतिथि-सत्कार निस्सन्देह प्रशंसनीय है। आप एक आदर्श राजा हैं, अद्वितीय हैं। संसार आपके समान नररत्नों पर गर्व करता है। तुम्हारा कल्याण हो।

रघु— सौम्य ! आपके गुरुदेव तो प्रसन्न हैं, उनके प्रिय मृग-शावक तो निर्विघ्न हैं, उनके अतुल प्रेम से पोषित वृक्ष, लतादि तो स्वस्थ हैं ?

कौत्स—सर्वत्र सुख एवं शान्ति का स्रोत बह रहा है भूपते ! किसी को किसी का अनुचित भय नहीं। भला, जिस राजा

के साम्राज्य में पवन तक स्त्रियों के वसन अनियमित रूप से नहीं उड़ा सकती, वहाँ विघ्न की आशङ्का क्यों ?

रघु——नहीं ब्रह्मचारिन्, यह सब वरतन्तु जैसे महात्माओं का ही प्रताप है, मैं क्या सत्ता हूँ।

कौत्स——राघव्, ऐसा न कहो, आप असाधारण व्यक्ति हैं। क्या आपने अपनी समस्त धनराशि विश्वजित-यज्ञ में दान कर असाधारणता प्रकट नहीं की ? यदि आपके पास धनराशि नहीं तो क्या ……………………धन नश्वर है और कर्त्तव्य—पालन अमर है। तुम्हारा दान, तुम्हारा त्याग और सेवा-भाव स्वयं आपके यश एवं गौरव के प्रतीक हैं। किन्तु……किन्तु……।

रघु——हाँ……हाँ कहिए चुप क्यों हो गये ? आपको इतना विषाद क्यों ?

कौत्स——महाराज ! मुझे दुःख है कि मैं समय खोकर यहाँ उपस्थित हुआ।

रघु——क्यों महामते……… ?

कौत्स——ऐसी परिस्थिति में आपसे सहायता का अनुरोध करना असामयिक है। मुझे गुरु-दक्षिणा देनी है। सुखी हो राजन् ! (जाना चाहते हैं)

रघुः——ठहरिए ब्राह्मण कुमार ! आपको गुरु-दक्षिणा में क्या देना है ? आप आज्ञा क्यों नहीं देते देव ?

कौत्सः—क्या कहूँ ? (रुक कर) तुम्हारा निर्धनत्व, यह मृण्मय पात्र स्वयम् बतला रहे हैं, मैं तुम्हें क्यों कष्ट दूँ ? तुम्हारा कल्याण हो । (जाने की चेष्टा करता है, महाराज उनके चरण पकड़ते हैं)

रघुः——ऋषिशिष्य, ऐसा तो न करो, मैं ब्राह्मण को खाली हाथ न लौटने दूँगा । तुम मुझे कलङ्की न बनाओ कौत्स ! मैं अवश्य आपको इच्छित धनराशि दूँगा आप मेरी यज्ञ-शाला में ठहरें तनिक विश्रान्ति लें । प्रतिहारी ! महात्मा कौत्स को यज्ञशाला में ठहराने को व्यवस्था करो ।

(कौत्स प्रतिहारी के संग यज्ञशाला की ओर प्रस्थान करते हैं ।)

रघु—— (स्वगत्) आह ! कैसा धर्म-संकट आ उपस्थित हुआ है । यदि कौत्स हताश लौटते हैं, तो अपकीर्ति होती है । रघु ! तेरे द्वार से ब्राह्मण खाली मुट्ठी जाय, महाशोक, घोर पतन । अब क्या करूँ ? साम्राज्य का सम्पूर्ण कोष तो मैंने दान कर दिया, अब द्रव्य कहाँ से प्राप्त हो ? (कुछ चिन्तित होकर चुप चाप सोचते हैं) हाँ तपस्या······ किन्तु इससे तो विलम्ब होने की सम्भावना है, संभव है ऋषि-शिष्य सिद्धि प्राप्ति से पहले ही निराश होकर

लौट जाँय । तब ? (कुछ सोच कर उत्साह के उछल पड़ते हैं) ओह ! क्यों न कुवेरपुरी पर आक्रमण किया जाय ? संघर्ष, हाँ संघर्ष ही तो, एक गुरुभक्त ब्राह्मण और अतिथि के लिए देवताओं से संघर्ष करना रघु के लिए कोई आश्चर्य नहीं । प्रतिहारी, (एक मनुष्य झुक कर खड़ा हो जाता है ।) सार्थी से कहो समस्त रथों को शस्त्रों से सुसज्जित रक्खे, आज प्रातः अरुणोदय से पूर्व कुवेरपुरी पर आक्रमण होगा । (बड़े उत्साह से अन्तःपुर में प्रस्थान करते हैं)

तृतीय दृश्य

(अर्द्धरात्रि में कोषाध्यक्ष बैठा हुआ प्रतिहारी से बातचीत कर रहा है, समीप ही धनालय है, किन्तु वह पूर्णतया खाली पड़ा है ।)

कोषाध्यक्षः—अरे भाई, सुना कि नहीं; सौम्य महाराज रघु ने महात्मा कौत्स को चौदह करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ गुरु-दक्षिणार्थ देने का वचन दिया है, और तुम यह भी जानते हो कि,—

रघुः—प्रतिहारी, कोष में कञ्चन की वर्षा हो रही है, यह कैसे संभव हो सकता है ? कोष की सम्पूर्ण धनराशि तो मैंने दान करदी। अच्छा, चलो हम स्वयं देखेंगे। (राज-कोप की ओर जाते हैं।

(महाराज रघु धनुप को वापिस शस्त्रागार में रख देते हैं)

पंचम दृश्य

(कौत्स राजकोप में सिंहासनारूढ़ हैं, राजा और कोपाध्यक्ष हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना कर रहे हैं)

कौत्सः—राजन्, तुम्हारा प्रभाव अनिर्वचनीय है, धन्य तुम्हारा पुण्य। आपने पृथ्वी ही क्या आकाश तक से यथा इच्छित धन प्राप्त कर लिया।

रघुः—महासते, आप के आशीर्वाद का ही यह फल है, मैं तो केवल इस गुरुत्तर कार्य को पूर्ण करने में साधन-मात्र हूँ। यह सब एक तेजस्वी तपस्वी के तपोबल का साधारण कौशल है।

कौत्सः—नहीं महाराज, यह सब कुछ आपके शौर्य एवं प्रचण्ड बाहुबल का प्रतीक है।

रघु:- विशेष लज्जित न करो ब्राह्मणकुमार ! क्या यह चमत्कार रघु के तीक्ष्ण तीरों के फलस्वरूप हुआ है ?

(सहसा महर्षि वरतन्तु का प्रकट होना)

वरतन्तु:–तीरों की तीक्ष्ण वर्षा से नहीं, किन्तु तुम्हारे अतिथि-सत्कार के पावन संकल्प, दानवीरता एवं पराक्रम से। (सब चौंक पड़ते हैं। रघु, कौत्स आदि चरणों पर गिर कर दंडवत करते हैं)

रघु:—आज मेरे समान कौन भाग्यशाली होगा ? महर्षि और उनके सुयोग्य शिष्य की युगल छवि के दर्शन प्राप्त कर मेरे नेत्र दिव्य हो गये। हा ! आज मेरी यह कुटिया धन्य है।

वरतन्तु:–गुरुभक्त हठी कौत्स, तुम अपनी अन्तिम परीक्षा में भी उत्तीर्ण हुए, तुम पर मुझे विश्वास है। अब सहर्ष जाकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करो। मैंने, यथाकथित गुरु-दक्षिणा प्राप्त करली। और महाराज, मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ।

रघु:—महर्षि मुझे तो केवल यह ही वर दीजिए कि महान् सङ्कट में भी रघु-वंशी अपने वचनों पर अटल रहें, चाहे प्राण चले जाँय पर वचन मिथ्या न हो।

वरतन्तुः–तथास्तु । (द्रव्य के ढेर को छू कर)

इस धनराशि से गऊ और दीन ब्राह्मणों की सेवा हो ।
(सहसा अदृश्य हो जाते हैं)

रघुः—महात्मा कौत्स, क्या यह स्वप्न था ?

कौत्सः—राजन् आपका कल्याण हो, मुझे गुरु-आज्ञानुसार सांसारिक अनुभव प्राप्त करना है । मङ्गल हो !

(कौत्स जाते हैं, राजा भी उनके साथ-साथ महल से बाहर आते हैं)

* पटाक्षेप *

पितृ-भक्त

पात्र—परिचय

पुरुष पात्र

१—जमदग्नि ऋषि

२—शक्तिवर्द्धन (परशुराम का एक भाई)

३—परशुराम

स्त्री पात्र

४—रेणुका (महर्षि की धर्मपत्नी)

पितृ-भक्त

(कुशा के आसन पर जमदग्नि ऋषि विराजमान हैं। आश्रम का आँगन गौमय एवं पीली मिट्टी से लिपा हुआ है। वेदी के दोनों ओर कमण्डल और आवश्यक हव्य पदार्थ रक्खे हुए हैं। महर्षि के सामने ही वेदी है। आश्रम के अग्रभाग में शिष्यवर्ग *स्वस्तिपाठ कर रहा है।*)

जमदग्निः—शक्तिवर्धन ! ओ शक्ति !! बोलता क्यों नहीं ? कहाँ चला गया ? (शक्तिवर्धन का प्रवेश-झुक कर नमस्कार करता है।) सुखी हो। शक्ति, बड़ा आश्चर्य है, आज सूर्योदय होने पर भी तुम्हारी माता गङ्गाजल लेकर नहीं लौटी। रेणुका जानबूझ कर कोई ऐसा कार्य नहीं कर सकती जो मेरी इच्छा के विरुद्ध हो। वह यह अच्छी प्रकार जानती है कि मैं शान्त हूँ, परन्तु मेरा क्रोध भी महान् प्रबल होता है। जान-बूझ कर गङ्गाजल लाने में इतना विलम्ब नहीं हो सकता,

अवश्य ही कोई अघटित घटना घटी है। जाओ वत्स, न जाने क्या हुआ? रेणुका एक सती है। (शक्ति पिता को नमस्कार कर रेणुका को ढूँढ़ने चल देता है) मार्ग में कोई सिंह तो नहीं मिल गया, साँप ने तो नहीं काट खाया, क्या जल में कहीं पैर फिसल गया है? आज मेरा बाँयाँ नेत्र क्यों फड़क रहा है? यह आश्रम आज उजड़ा-सा क्यों दिखाई देता है? (विचार करते-करते महर्षि ध्यानामग्न हो जाते हैं। थोड़े समय पश्चात् रेणुका भयभीत होकर वहाँ आती है और महर्षि के चरणों में पछाड़ खा कर गिर पड़ती है। और महर्षि के नेत्र खुल जाते हैं)

जमदग्नि—रेणुके! नित्य तो तुमको इतनी अधिक देर नहीं लगती थी, आज ही क्या बात हुई।

(रेणुका नीचा मस्तक कर खड़ी रहती है।)

चुप रहने से काम नहीं चलेगा। बोलो, क्या तुम पूजन के समय को भी भूल गई थी? क्या तुम्हारे हृदय में मेरे प्रति अब श्रद्धा नहीं रही?

रेणुका—नाथ क्षमा! मैंने अपराध किया है।

जमदग्नि—क्षमा की बात तो पीछे होगी पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो।

रेणुकाः—भगवन् ! भागीरथी के तट की शोभा ने मुझे प्रभावित........।

जमदग्निः—गङ्गातट तो तुम नित्य ही जाती हो, विलम्ब का यह कारण तो संगत नहीं है। तुम झूठ बोल कर दूसरा अपराध कर रही हो।

रेणुकाः—नाथ ! मुझे बचाओ मैंने अपराध किया है।

जमदग्निः—मैं सब जानता हूँ। मार्तिकावत के राजा का विहार देखने में तुम्हारा हृदय तल्लीन था। तुम पतिव्रता होकर भी पर पुरुष को देखती रही। एक सती के कर्तव्य को भूल गई। तुम्हें पूजन, हवन और यज्ञादि की चिन्ता भी न रही।

रेणुकाः—प्रभु ! आप अन्तर्यामी हैं। मैंने अवश्य ही सतीधर्म के विरुद्ध आचरण किया है। (रोती है

जमदग्निः—केवल अपराध को स्वीकार करने से ही काम नहीं चलेगा। तुम्हें इसका कठोर दण्ड मिलना चाहिए।

रेणुका—नाथ ! (चरण-स्पर्श करना चाहती है)

जमदग्निः—दूर हट, बस, हो चुका तेरा अभिवादन।

रेणुकाः—स्वामी ! मैं अवश्य ही दुरात्मा हूँ, एक कर्तव्य-

भ्रष्टा हूँ, मैंने घोर पाप किया है। हाय ! मेरा सतीत्व......।

जमदग्निः—चलो, यह भी अच्छा ही हुआ। मैं आज तेरे समान भोली और कर्तव्यभ्रष्टा स्त्रियों को आदर्श सिखाऊँगा। भगवन् ! मेरे कठोर दण्ड को सहन करने का रेणुका को साहस दो।

रेणुकाः—मुझे अवश्य दण्ड दीजिए प्रभु ! मैं अपने पाप का फल भोगूँगी। (रोती है)

जमदग्निः—शक्ति ! खड़े खड़े क्या देख रहे हो ? क्या तुम मेरी आज्ञापालन कर सकते हो ? स्मरण रहे, यह एक असाधारण आज्ञा है—अपने हाथों से अपनी ही माँ का वध करना होगा। बोलो, चुप क्यों हो ? केवल कल्पना-मात्र से ही काँप उठे।

शक्तिः—पूज्यपाद ! मुझे क्षमा कीजिए, मैं असमर्थ हूँ। मुझ से यह क्रूर कर्म नहीं हो सकता। जिस जननी ने अपना सुधा तुल्य दूध पिलाया, स्वयम गीले में सोकर मुझे सूखे में सुलाया और न जाने क्या-क्या कष्ट सहन किए, उसी जन्मधात्री को, उस वात्सल्यमयी देवी को

क्या अपने हाथों से वध करूँ ? असंभव, असंभव-मैं असमर्थ हूँ। जिस प्रकार मुझको पिता के प्रति भक्ति है, उसी प्रकार मैं माता के प्रेम से जीवित हूँ। केवल निरे आदर्श के लिए अपने हाथों से स्वयं ही अपना सर्वनाश कैसे करूँ ?

[जमदग्नि और शक्तिवर्धन की बातें सुन कर, आश्रम-वासी भी वहाँ आ इकट्ठे होते हैं]

जमदग्निः—दूर हट कायर ! तू माँ के स्नेह में अन्धा हो रहा है। मोहवश तुझे कर्तव्य स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ता। तू आदर्श के महत्त्व को नहीं समझ सकता। जाओ ! तुम सब कायर हो।

रेणुकाः—शक्ति ! पुत्रो !! मुझको दण्ड मिलने से हम सब का कल्याण होगा। घबराओ मत, मेरा वध करो।

[हाथ में परशु लिए हुए सहसा वीरवेष में परशुराम का प्रवेश]

जमदग्निः—कौन ? वत्स राम ! तुम ठीक समय पर आये। तुम्हारी माता ने आज सती-धर्म के विपरीत आचरण किया है।

परशुरामः—(स्वगत) क्या मैंने अपनी जन्मधातृ एवं इन सुकुमार भ्राताओं की हत्या कर एक उचित कार्य किया है ? हाँ ! यह एक उत्तम कार्य हुआ है, इसके द्वारा एक महान् आदर्श की रक्षा हुई है, जिसको परशुराम के सिवा संसार में और कोई अन्य नहीं कर सकता था । यह सत्य है कि परशुराम आवश्यकता से अधिक कठोर है, परन्तु माता'''
हाय माता तू ही बता मैं क्या करता ? क्या मैं आवेश में सब कुछ भूल गया, अन्धा होगया ? मैंने तो केवल पिता की आज्ञा का पालन किया है, जो नियमानुकूल है। मातश्वरी ! क्या तूने मेरा इसी-लिए लालन-पालन किया था कि मैं तेरा वधिक बनूं ? क्षमामयी ! उठो । मेरे माता के लाडले सहोदरों, उठो । ओह ! संसार, मेरी ओर आँखें फाड़-फाड़ कर देख मैं वधिक हूँ, घृणित हूँ, हेय हूँ । शक्ति ! कहाँ हो ? कोई नहीं । आज चारों ओर अन्धकार है । हाय ! मैंने ऊँचे आदर्शों की आड़ में.........।

(सहसा महर्षि का प्रवेश)

जमदग्नि-सावधान वत्स ! आदर्श आदर्श ही है। कर्तव्य-पालन कर के वीर पश्चाताप नहीं करते । कर्तव्य-

क्षेत्र में आकर और उसमें भूँझने के पश्चात् उसकी सार्थकता की आलोचना करना तुम्हारे जैसे आदर्श वीरों को शोभा नहीं देता । कौन कहता है कि तुम वधिक हो ? उठो ! भगवन्, आप जो कुछ करते हैं अच्छा ही करते हैं । आपकी इच्छा के विपरीत एक पत्ता भी नहीं हिल सकता । मनुष्य का धर्म तो केवल कर्म करना है, उसके परिणाम की आलोचना करना नहीं । (स्वयं महर्षि गद्गद् हो जाते हैं, परशुराम उनके चरण-स्पर्श करते हैं)

परशुरामः-तात ! मैं अन्धकार में हूँ, मुझे सत्यमार्ग की आवश्यकता है । मैं प्रकाश चाहता हूँ । मैं एक वधिक हूँ, एक मातृघाती हूँ ।

जमदग्निः तुमने मेरी कठोर आज्ञा का निर्विरोध पालन किया है । अपनी गर्भधारिणी माता और सहोदरों का स्नेह भी तुमको कर्तव्य से विमुख नहीं कर सका, यह एक असाधारण बात है । रेणुका और उसके पुत्रों की मृत्यु का भार तो मेरे कंधों पर है, इसके लिए तुम चिन्तित क्यों ?

परशुरामः—देव ! अन्ततः सती रेणुका मेरी माता है । वह सदैव मेरे लिए वन्दनीय है ।

जमदग्निः—क्षुब्ध न हो वत्स ! तेरा तात्पर्य क्या है ? मैं तुमसे प्रसन्न हूँ।

परशुरामः—मेरा तात्पर्य आपसे छिपा नहीं है। मैं वही चाहता हूँ; जो एक बछड़ा अपनी जननी के वियोग में चाहता है। आप तो स्वयं सर्वज्ञ हैं।

जमदग्निः—क्या तुम्हारा आशय अपनी मातेश्वरी के पुनर्जीवन से है।

परशुरामः—हाँ प्रभु ! निसन्देह मेरी माता और मेरे भाई अब महर्षि की कृपा के योग्य हैं। यह अपराध तो उस मदान्ध राजा का है, जिसका दर्प-दमन करने की मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ।

जमदग्निः—शान्त पुत्र ! अवश्य ही सती रेणुका अपना प्रायश्चित कर दिव्य होगई है। भगवन् ! सती रेणुका अब निर्दोष है, उसका पुनर्जीवन हो।

(महर्षि अपने कमण्डलु में से जल की अञ्जली भर रेणुका और उसके पुत्रों पर बरसाते हैं और वे सब पुनः जीवित हो जाते हैं और परशुराम माता के

रेणुकाः—धन्य राम ! मैं महर्षि जैसा पति और परशुराम जैसा पुत्र पाकर धन्य हूँ। तुम्हारे अतुल साहस के कारण ही हम एक महान् धर्म-संकट से बच गए। संसार तुम्हें मातृघाती नहीं कह सकता। तुम्हारा हृदय वज्र-सा दृढ़ एवं तुम्हारी शक्ति अजय हो।

(परशुराम माता के चरणों में पुनः गिरते हैं, आकाश से देवता पुष्पों की वर्षा करते हैं और सब आश्रमवासी जोर से बोलते हैं, "पितृ-भक्त परशुराम की जय"।)

॥ पटाक्षेप ॥

ग़रीब का संसार

पात्र—परिचय

पुरुष पात्र

१. अध्यापक
२. माणक (एक स्कूल का लड़का)
३. किशोरसिंह (स्कूल का दूसरा लड़का)
३. दीनानाथ (एक गरीब विद्यार्थी)
५. हैडमास्टर
६. दौलतराम (एक धनी सेठ)

स्त्रीपात्र

७. तुलसी (दीनानाथ की विधवा मा)
८. चम्पा (दौलतराम की स्त्री)
९. रोहिणी (एक अन्य स्त्री)

ग़रीब का संसार

(स्कूल का एक क्लास-रूम है। क्लास रूम की सफेद दिवारों में आधुनिक ढंग की खिड़कियाँ हैं और दो द्वार हैं। कमरे के आँगन में कुर्सियाँ और टेबिलें सिलसिलेवार पड़ी हुई हैं। कुछ विद्यार्थी इन पर बैठे हैं और कुछ इधर-उधर भग रहे हैं और शोर मचा रहे हैं। घंटा बजता है और गुरुजी क्लास में प्रवेश करते हैं।)

अध्यापकः—(अपनी कुर्सी पर बैठते हैं और सब छात्र भी अपने-अपने स्थान पर बैठते हैं) तुम लोग आदमी हो

या गये ? दसवीं कक्षा में आगए किन्तु शिष्टता का नाम तक न सीखा।

(कुछ लड़के हँसते हैं)

अध्यापकः—क्यों रे माणक ! यह क्या गोलमाल है ?

माणकः——(अपने स्थान पर खड़ा होकर) मास्टर साहब ! मुझे कुछ मालूम नहीं, मैं तो 'गुप्तजी की कला' पढ़ रहा था।

अध्यापकः—(मुँह बनाकर) बड़े पढ़ने वाले आये हैं। मैं अच्छी तरह जानता हूँ तुम ही सब झगड़े की जड़ हो। बता, कितने सवाल करके लाया है ?

माणकः——सवाल, सवाल तो मैंने आज नहीं किए।

अध्यापकः—बस, चलगई पोल। बैठजा, व्यर्थ समय नष्ट करता है।

किशोरसिंहः—(खड़ा होकर) मास्टर साहब, आज १५ ता० है।

अध्यापकः—हाँ, हाँ, फीस कौन कौन नहीं लाये ? खड़े हो जाओ।
(दो विद्यार्थी अपने-अपने स्थान पर खड़े हो जाते हैं)

अध्यापकः—ओह, यह क्या किस्सा है ? चन्द लड़कों के लिए सम्पूर्ण कक्षा को नित्य हानि उठानी पड़ती है। है

भगवान, दुनिया कहती है कि अध्यापक पोल की खाते हैं, किन्तु यहाँ खोपड़ी का कचूमर निकल जाता है बैठजा, कल अवश्य जमा करा देना। अब कौन रहा? (दूसरे लड़के की ओर घूर कर देखते हैं, जो वेष-भूषा से अत्यन्त गरीब दिखाई पड़ता है) ओह, यह तो आप हैं, दीनानाथजी। फीस लाये हो।

दीनानाथः—(घबराता हुआ उद्विग्नता से बोलता है) जी·····हूँ नहीं··· मैं फीस नहीं दे सकता।

अध्यापकः—तो, आपने स्कूल में पधारने का व्यर्थ कष्ट किय लातों के देव बातों से क्यों मानने लगे। धोखा देकर घर से पहले ही रुपए ले आया है और अब हमें भी धोखा देना चाहता है। मैं इन चालाकियों को खूब समझता हूँ। बीस वर्ष तक लड़के पढ़ाये हैं, कहीं भाड़ नहीं झोंका है। मैं तेरा मुँह भी देखना नहीं चाहता। लेजा रे किशोर, इसे हैड़मास्टरजी के पास।

दीनानाथः—परन्तु मास्टर साहब·······।

अध्यापकः परन्तु-वरन्तु कुछ नहीं, निकलो यहाँ से (कशोर और दीनानाथ हैड़मास्टरजी के कमरे की ओर जाते हैं) देखा, (लड़कों की तरफ मुड़कर) दया का उलटा

प्रकार भिक्षा के आधार पर मैं दीनता से कब तक युद्ध करता रहूँगा ? मैंने अपने स्वाभिमान को अभी नहीं बेचा है । आपकी दयालुता को धन्य है इस बार मैं आपसे सहायता नहीं लूँगा । मेरा अन्तिम प्रणाम ।

(पाठशाला से चला जाता है)

❀ पट-परिवर्तन ❀

❀ तृतीय दृश्य ❀

(अँधेरी रात में एक विधवा स्त्री अपने छप्परदार फूटे मकान में प्रवेश करती है । मकान का आँगन पीली मिट्टी से लिपा हुआ है । छप्पर के नीचे एक लड़का अचेत खटिया पर सो रहा है)

सुरमाः— (स्वगत) पढ़ रहा होगा, मेरा बच्चा । रात-दिन पढ़ता है । हे भगवान, इस दुनिया में बालक का केवल आप ही का सहारा है । दीनू, राजा, लल्लू, क्या तुम सो गये हो बेटा ? (गद्गद होकर) बोलते क्यों नहीं ? देखो, आज मैं तुम्हारे लिए क्या लाई हूँ ? (खटिया पर पड़ा हुआ देखकर माँ

पड़ती है और उसे जगाने की चेष्टा करती है) अरे ज्वर ! (शरीर को छूकर)

दीनानाथः (अचैतन्यावस्था में बड़बड़ाता है। गरीबो का जन्म दुःख भोगने और रोन के लिए होता है। कष्ट-सहन करने से आत्मा बलवान होती है। अतः कुछ चाँदी के टुकड़ों के लिए मैंने अभी मेरे स्वाभिमान को नहीं बेचा है। क्या गरीबों का जन्म इसी अभिप्राय से होता है कि उनकी पतितावस्था को लक्ष्मी के पुजारी हँसी एवं घृणा की वस्तु समझे ? (जोर जोर से रोता है, तुलसी उसे छाती से लगाती है और स्वयं भी रोती है, सहसा दीनानाथ के नेत्र खुलते हैं) माता ! माता ! अब मैं पाठशाला नहीं जाऊँगा। वहाँ निर्धन एवं अनाथ बालकों के लिए स्थान नहीं है। कल से मैं मजदूरी करूँगा। पसीना बहा कर मजदूरी करने में मजदूर को बड़ा आनन्द आता है। माँ, क्या वृद्धावस्था में भी तू मेरे लिए इसी प्रकार कष्ट झेलती रहेगी ? मैं तुझे कल से सेठ के यहाँ मजदूरी करने नहीं जाने दूँगा, अब मैं स्वयं मजदूरी करूँगा। (पुनः रोने लगता है)

तुलसीः——रो मत मेरे लाल, हे भगवान्, आप दया के सागर हैं और गरीबों को केवल आप ही का सहारा है,

फिर उनकी ऐसी दशा क्यों ? निर्धन होने के कारण एक दीन का बेटा विद्या जैसे अमूल्य गुण से वंचित रह जाता है, यह कैसी अस्वाभाविक बात है ?

* पट-परिवर्तन *

चतुर्थ दृश्य

(संगमरमर के बरामदे में आराम कुर्सी पर एक सेठ लेटा हुआ बाग की हवा खा रहा है। पीछे से एक दासी पंखा झल रही है। सामने मखमली आसन पर सेठ की धर्मपत्नी बैठी-बैठी अपने पति से बात-चीत कर रही है।)

दौलतराम:- चम्पा, तुम सचमुच चम्पा हो। (हँसता हुआ)

चम्पा:- हूँ, क्या आपको विश्वास है ?

दौलतराम:- वह देखो, (बगीचे की ओर संकेत करता है) चम्पा की कलियां पर भोले-भोले भ्रमर कितना मधुर गुञ्जन कर रहे हैं ?

ठीक है, पुरुष मतलबी होता है। दो दिन पश्चात् जब चम्पा की पत्तियाँ सूखने लगेंगी, तब आपके ये भोले भ्रमर कठोर हो जाँयगे और........।

(तुलसी का प्रवेश)

दौलतराम:–(कुछ क्रुद्ध होकर) तुमने ही इन कमीनों को सर पर चढ़ा रक्खा है। कहीं यह समय इसके यहाँ आने का है ? अरी तुलसी, हमने तो एक दूसरी मिश्रानी का प्रबन्ध कर लिया है। अब तुम यहाँ आकर हमको व्यर्थ कष्ट क्यों देती हो ?

तुलसीः ——अन्नदाता ! मैं एक असहाय हूँ, केवल आपही का तो सहारा है।

दौलतरामः—महीने में चार दिन काम करने आती है और नौ नाच नचाती है। तेरे लिए अब यहाँ स्थान नहीं है। चली जा यहाँ से।

तुलसीः——मालिक, अवश्य ही इस महीने में नियमित रूप से नहीं आ सकी। मालिकिन ! (चम्पा की ओर मुड़ कर) मैं तुम्हारे चरण छूती हूँ। मेरा बच्चा कई दिन से अचेत पड़ा है, उसके जीवन की अन्तिम घड़ियाँ हैं। बताओ, आप स्वयं भी एक माता हैं, ऐसी दशा में मैं उसे अकेला छोड़ कर आपकी सेवा कैसे कर सकती हूँ ? (रोने लगती है)

चम्पाः——तुलसी, जब इन्होंने तुमसे साफ-साफ कह दिया है तो अब मैं क्या कर सकती हूँ ?

तुलसीः——यह क्या कह रही हो चम्पा देवी ? 'मैं बरबाद हो जाउँगी, मेरी दुनिया सूनी हो जायगी। मैंने तो समझा था कि इस घोर विपत्ति में आपसे सहायता मिलेगी, परन्तु जो थोड़ा बहुत सहारा था वह भी आपने हटा लिया। खैर, जो कुछ मेरे भाग्य में होगा वह होकर रहेगा, कृपा कर आप मेरा हिसाब कर दीजिए।

दौलतरामः—यहाँ अपशकुन करने क्यों आई है कम्बख्त ? निकलजा यहाँ से वरना धक्के पड़ेंगे, मुझे सब हाल रेवती ने बतला दिया है। तूने दौलतबाग की कई चीजें चुराई हैं, और अब हिसाब माँगने आई है, चोर कहीं की।

तुलसीः——चोर, कौन चोर ? यह क्या कहते हो सेठ (चहरे पर सहसा तेजी आजाती है) चोरों और लुटेरों को संसार में चोर ही चोर दिखाई देते हैं, एक करोड़पति सेठ होते हुए एक अबला पर ऐसा लाँछन लगाते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आई। गरीबों की हड्डियाँ चूँस-चूँस कर फूलने वाले मनुष्य, न मालूम आज तक तुमने कितने घर बरबाद किये हैं। मेरे जिगर का टुकड़ा खटिया पर पड़ा-पड़ा तड़फड़ा

रहा है और तुम्हें तनिक भी दया नहीं आती। क्या तुम्हारा हृदय पाषाण से भी अधिक कठोर है ?

दौलतराम:—(सेवक की ओर संकेत करता है) लगे तमाचे, कुलटा कहीं की, चुड़िया पकड़ कर कोठी से बाहर फेंक दो।

(नौकर मारता है और तुलसी चिल्लाती है)

तुलसी:— -हाय ! हाय ! और मार निर्दयी·· ····· ।

(तुलसी गिर पड़ती है और नौकर घसीट कर सड़क पर पटक देता है और तुलसी बेहोश होजाती है।)

पंचम दृश्य

(तुलसी अपने मकान के अग्रभाग में एक चटाई पर लेट रही है। दो धनी स्त्रियाँ उसके समीप बैठी हैं। एक स्त्री जो अवस्था में प्रौढ़ दिखाई देती हैं, उसे पंखा कर रही है और दूसरी स्त्री तुलसी के मुँह में पानी पटक रही है। कुछ ही क्षणों में तुलसी सचेत हो जाती है)

रोहिणीः—अब जी कैसा है बहिन ? (तुलसी बोलने की चेष्टा करती है परन्तु उसके कण्ठ रुँध जाते हैं) राधा, थोड़ा पानी और...(लड़की तुलसी के गले में थोड़ा पानी डालती है और वह सजग हो जाती है)

तुलसीः— आप यहाँ कैसे......? मैं कहाँ हूँ ? दीनू, ठहर मैं तेरे ''पास अभी आई ।

रोहिणीः—डरो नहीं, तुम अपने घर में ही हो । हम तुम्हारे पड़ोसी हैं । जब तुम सड़क पर बेसुध पड़ी थीं, हम लोग शहर से घूम कर आरहे थे । राधा ने तुमको पहिचान लिया और तुमको अपनी मोटर में बिठाकर यहाँ ले आई ।

तुलसीः—ओह ! अब समझी—एक पूँजीपति ने मार कर सड़क पर डाल दिया और उसी श्रेणी की अन्य महिलाओं ने करुणा कर मुझे घर पहुँचा दिया । दीनू मैं घर आगई । अब मैं तुझे अकेला छोड़ कर कभी बाहर न जाऊँगी । (उठने की चेष्टा करती है और रोहिणी और राधा उसकी सहायता करती हैं ।)

तुलसीः——मेरा लाल, मेरा बच्चा अपने जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा है। मैं कितनी कठोर हूँ, जो एक पैसे की उसे दवा भी न पिला सकी। बहिन! मुझे उस झोंपड़ी तक पहुँचा दो। वहाँ मेरा जीवन-दीपक टिमटिमा रहा होगा।

(रोहिणी और राधा तुलसी को पकड़ कर झोंपड़ी तक लेजाती हैं, और तुलसी दीनानाथ के अचेत शरीर से चिपट कर रोने लगती है।)

तुलसीः—— (रोती हुई) यदि आज दीनानाथ स्वस्थ होता, तो उस नर-पिशाच की आँखें निकाल लेता।

रोहिणीः——माताजी, तुम्हारा बेटा कब से बीमार है?

तुलसी.—— दो सप्ताह से बहिन, ग़रीबों की दुनिया ही ऐसी है। दीनू को विद्या से प्रेम है, परन्तु बिना पूँजी के स्कूल में कैसे पढ़ सकता था? परीक्षा की फीस न देने पर इसका नाम काट दिया गया। उसी दिन से इसके हृदय पर एक ऐसा धक्का लगा कि इसने खटिया पकड़ली। उसी दिन से दीनू कहता है, "माँ, गरीबों को इस दुनिया में जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है।"

(बात ही बात में दीनानाथ जोर-जोर से निश्वास खींचने लगता है और सहसा उसके नेत्र खुल जाते हैं)

दीनानाथः—माँ।······पा······नी······। (तुलसी उसके कण्ठों में जल पटकती है

तुलसीः——बेटा, अब मैं तुझे अकेला छोड़ कर कहीं नहीं जाऊँगी।

दीनानाथः—अ···च्छा···। (रोहिणी और राधा की ओर देख कर मुस्कराता है, फिर नेत्र बन्द कर लेता है और अन्तिम निश्वासें खींचने लगता है और कुछ ही क्षणों में निश्वास रुक जाती है)

तुलसीः——यह देखो बहिन। मेरा लाल, मेरा जीवन, इसी तरह बेसुध पड़ा रहता है। हाय! मैं कितनी कठोर हूँ? न दवा का कुछ प्रबन्ध है न कुछ पालन का। हे भगवान, मेरा मुन्ना, आप ही बताओ देवी, मैं ऐसी अवस्था में उस नर-पिशाच की कैसे सेवा कर सकती थी? बहिन, मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ; मेरे बच्चे को किसी तरह बचाओ, जीवन दान दो। हे भगवान्! (रोने लगती है)

रोहिणीः——हे प्रभु ! (दीर्घ निश्वास लेकर मरीज की नब्ज देख कर चौंक पड़ती है) शरीर ठंडा होगया !

तुलसीः——बोलो बहिन, मेरा लाल बच तो जायगा ? बोलो, बोलो, तुम बोलती क्यों नहीं ? दीनू, बेटा तुम आज बोलते क्यो नहीं ?

(दीनानाथ के शरीर को हिलाती है और उसके सर को अपने घुटने पर रखती हुई जोर-जोर से रोने लगती है। तुम्हें आज क्या होगया है। हाय ! भगवन्…… ।

रोहिणीः——(नेत्रों से आँसू बहाती हुई) माताजी, शान्त……। तुम्हारा जीवन-दीपक बुझ गया। बच्चे को आँगन पर उतारना है। हे राम !

तुलसीः——मेरा लाल ! (पछाड़ खा कर गिर पड़ती है, रोहिणी और राधा दीनानाथ के शव को चटाई पर रख कर चादर से ढक देती है)

रोहिणीः——राधा, ड्राइवर से क्रिया-कर्म का प्रबन्ध करने के लिए कह दे।

खुसरो की आँखें

पात्र—परिचय

पुरुष पात्र

१. अकबर (हिन्दुस्थान का सम्राट)
२. अज़ीज कोका (खुसरो का श्वसुर)
३. मानसिंह (मुग़ल सेना का सेनापति)
४. सलीम (जहाँगीर)
५. खुसरो (जहाँगीर का पुत्र और अकबर का पौत्र)
६. अर्जुनदेव (सिक्खों के गुरु)
७. देवदत्त (गुरु का एक शिष्य)
८. जालिम खाँ (सरकारी वकील)
९. गयास (प्रहरी)
१०. शेरसिंह (प्रहरी)
११. खुर्रम (जहाँगीर का दूसरा पुत्र)

खुसरो की आँखें

(आगरे के शाही महलों में अकबर महान् रोग-शय्या
पर पड़ा है। उसके समीप ही अजीज कोका और
जयपुर के महाराज मानसिंह बैठे हुए
सम्राट से मन्त्रणा कर रहे हैं।)

अकबरः——आप लोगों की राज-भक्ति पर मुझे पूरा विश्वास है, यद्यपि सलीम ··(कण्ठ रुँध जाते हैं)।

अजीज कोकाः—जहाँपना ठीक फर्माते हैं। सलीम के रङ्ग-ढङ्ग और भी खतरनाक होते जारहे हैं।

मानसिंहः——सम्राट, विद्वानों का कथन है, "बीती ताहि बिसारिए······", हमें तो अब भविष्य के लिए विचार करना है। क्या शहजादा खुसरो इतने योग्य नहीं कि शासन की बागडोर अपने हाथ में ले लें? क्या उनमें सुशासनकर्ता के सब गुण विद्यमान नहीं हैं? मैं तो कहूँगा कि उस नव विकसित कुसुम को सारी

प्रजा, समस्त सरदार और जहाँपना भी हृदय से चाहते हैं। हम हुजूर को विश्वास कराते हैं और स्वयं प्रतिज्ञा करते हैं कि खुसरो की छत्रछाय में रहकर हम सब अपने रक्त की नदियाँ बहाकर मुगल साम्राज्य की रक्षा करेंगे।

अकबरः——तुम सच कहते हो मानसिंह, खुसरो प्राणों से भी अधिक प्यारा है। वह योग्य है, चतुर है और विद्वान् भी है, परन्तु ......।

अजीज कोकाः-परन्तु, जहाँपना को बागी सलीम से अधिक प्रेम है, जिसके हाथ अबुलफजल जैसे महात्मा के खून से रंगे हुए हैं।

अकबरः——हो सकता है सलीम पितृ-द्रोही हो, उसने नादानी से खून किया हो और उसमें अवगुण भी हों, किन्तु वह बचपन से ही भोला है। वह आवेग में आकर अन्धा हो जाता है, उसकी प्रकृति को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। परन्तु जब उसे अपने कर्मों पर पश्चाताप होगा वह तुरन्त ही क्षमा के लिए प्रार्थना करेगा।

अजीज कोकाः-और जहाँपना उन्हें क्षमा कर देंगे।

अकबर—हाँ, अवश्य क्षमा कर दूँगा, कपूत बेटा अपने बाप को चाहे भूल जाय, किन्तु बाप तो उसको नहीं भूल सकता। सरदारों, जिस प्रकार सलीम की बगावत मुझे कष्ट पहुँचा रही है, उसी प्रकार क्या सलीम को खुसरो का बादशाह होना अच्छा लगेगा? गृहयुद्ध की दावानल भभक उठेगी। समस्त मुगल-सेना विद्रोही बनकर इस साम्राज्य की ईंट से ईंट भिड़ा देगी। प्राणों से प्यारे खुसरो का जीवन संकट में पड़ जायगा। ओह! कितना भयानक दृश्य होगा जिसकी कल्पना-मात्र से हृदय काँप उठता है। मुझे भारी विप्लव के चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

(चोबदार का प्रवेश—सर झुका कर आदाब बजाता है)

चोबदारः— जहाँपना की खिदमत में शहजादा सलीम हाजिर होना चाहते हैं। उनके साथ वजीरेआजम बीरबल और अर्थ-सचिव टोडरमल भी हैं।

अकबरः— देखा मानसिंह, सलीम कितना भोला है। उसने बीरबल की बात मानली होगी, अब मैं शान्ति से मर सकूँगा। चोबदार, उनको शीघ्र यहाँ भेज दो। (मानसिंह और अजीजकोका क्रोधित से दिखाई पड़ते हैं) आखिर सलीम को समझ आ गई।

अजीजकोका:-शहजादा हम पर विश्वास कैसे करेंगे ?

अकबर:— जिस तरह बीरबल और टोडरमल पर उसने विश्वास किया है, उसी तरह तुम पर भी वह भरोसा कर सकता है।

(सलीम, बीरबल, टोडरमल का प्रवेश होता है। सलीम बादशाह के पलंग के पास घुटनों के बल बैठ जाता है और सम्राट के चरण पकड़ फूट-फूट कर रोने लगता है। सब सरदार खड़े हो जाते हैं। अकबर उठ बैठता है और सलीम को हृदय से लगा लेता है)

सलीम, बेटा, आज मुझे बहुत खुशी है, कि तुमने अपने बूढ़े बाप की बात मानली। मगर अब मैं तुमसे पूछना चाहता हूँ कि तुमने उस पवित्र अबुल-फजल की हत्या क्यों की ? खैर, अब मुझे तुम्हारे सब अपराधों को भूल जाना चाहिए, मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ। बीरबल, तुमने दो टूटे हुए दिलों को फिर मिला दिया इसके लिए तुम्हें धन्यवाद (बीर-बल सर झुका लेता है)

बीरबल:——जहाँपना, शहजादे ने आपके चरणों की शपथ खा-कर हमारे सामने प्रतिज्ञा की है कि वह भविष्य में सम्राट के विरुद्ध कोई षड्यन्त्र नहीं करेंगे।

अकबरः—सरदारों, अब मेरी मृत्यु के दिन निकट आ गए हैं, मैं चाहता हूँ कि सलीम मेरी नजरों के सामने ही हिन्दुस्तान का सम्राट बने। आप लोगों कि इसमें क्या राय है ? आप चुप क्यों हो ? क्या सलीम सम्राट होने के लायक नहीं है ?

बीरबलः—शहजादे की योग्यता में किसी को भी शक नहीं है। मुझे पूरी आशा है कि सलीम का शासन हिन्दुस्तान के इतिहास में प्रसिद्ध होगा।

अकबरः—बेटा, (सलीम की ओर घूमकर) अब केवल पश्चाताप करने से और रोने से काम नहीं चलेगा। लो, यह मेरी तलवार और यह राजमुकुट (राजमुकुट सलीम के मस्तक पर रखता है) आज से सलीम सम्राट जहाँगीर है।

सब सरदारः—(मस्तक झुका लेते हैं) सम्राट जहाँगीर की जय !

* पट-परिवर्तन *

द्वितीय दृश्य

(सिक्खों के गुरु अर्जुन देव अपने आश्रम में एक स्वच्छ आसान पर आसीन हैं। गुरु के सम्मुख सिंहासन पर कुछ पवित्र पुस्तकें रक्खी हुई हैं और गुरु अपने प्रधान शिष्य से मंत्रणा कर रहे हैं।)

अर्जुन देवः—देवदत्त, आज रात को हमने एक विलक्षण स्वप्न देखा है।

देवदत्तः——वह क्या गुरुदेव ?

अर्जुनदेवः—उस दृश्य के स्मरण-मात्र से ही रोमाञ्च होने लगता है। निर्जन वन था, हिमाच्छादित हिमालय की गगनचुम्बी शाखाएँ सर्वत्र फैल रही थीं, नदियाँ और झरने तीव्र गति से बह रहे थे मृगादि अन्य जीव-जन्तुओं का जमघट जंगल के जीवन का प्रतिबिम्ब दिखा रहा था।

ऐसे वातावरण में कण्टकाकीर्ण पत्थरीली कठोर भूमि पर अनेक विपदाओं से व्यथित एवं पददलित भारत माता गुलामी की जंजीरों से जकड़ी हुई अर्धलेटी अवस्था में पड़ी थी। उसके शब्दों में पुकार थी जो हृदय को चीरकर आत्मा तक प्रवेश कर रही थी। उसके नेत्रों से अविरल रक्त की नदियाँ बह रही थीं। उसके भाव एवं अनुभाव क्रान्ति चाहते थे। परन्तु, वह निराश न थी। वह आशा—पूर्ण होकर अपनी संतति की ओर देख रही थी।

देवदत्त——ओह! कितना हृदयस्पर्शी चित्र है, जिसमें विशाल भारत की वेदनाएँ कूट-कूट कर भरी हैं।

अर्जुनदेवः—देवदत्त, केवल चित्र को देखकर प्रभावित होने से ही काम नहीं चलेगा, हमें माँ के हृदय में धधकने वाली ज्वाला को शान्त करने के लिए कर्म एवं त्याग करने होंगे।

देवदत्तः——हम गुरु की आज्ञा का अन्तिम समय तक पालन करने की प्रतीक्षा करते हैं। अकबर के निधन के उपरान्त भारतवर्ष में पुनः धर्म के नाम पर क्रूरता का नंगा नृत्य होने जा रहा है। जहाँगीर मुल्ला और मोलवियों के हाथ की कठपुतली बन रहा है। ऐसे अवसर पर हमें भी अपनी नीति पुनः निर्धारित करनी होगी।

अर्जुनदेवः—देवदत्त, अब पूजा-पाठ के दिन चले गए हैं। देश की आवश्यकतानुसार हमें भारतीय जनता को तय्यार करना है। जाओ, पंचनद में युद्ध का शङ्ख बजादो। संगठन के द्वारा वीर योद्धाओं के हृदयों में जोश भर दो, उनके कान में स्वतन्त्रता का मन्त्र फूँक दो। समय एक महान् क्रान्ति चाहता है। हिन्दू-मुस्लिम एकता का नारा अकबर के साथ विदा हो गया। आज तो यवन पुनः हमको दासता की बेड़ियों में जकड़ने का स्वप्न देख रहे हैं। संघर्ष अनिवार्य है जाओ, संगठन का कार्य शीघ्र आरम्भ करो।

(एक शिष्य का प्रवेश)

शिष्यः——गुरुदेव, शहजादा खुसरो और मानसिंह आपके दर्शन करना चाहते हैं।

अर्जुनदेवः—सेनापति मानसिंह और जहांगीर का बेटा खुसरो आज यहाँ क्यों आये हैं ? (देवदत्त की ओर देखते हैं, देवदत्त वहाँ से जाना चाहता है) देवदत्त, सम्भव है चतुर सेनापति से सम्भाषण करते समय तुम्हारी उपस्थिति लाभप्रद हो और तुम (शिष्य की ओर संकेत कर के) उनको यहाँ ले आओ। देव, समझते हो इस रहस्य को ?

देवदत्तः——सम्भव है, पंचनद में वह हमारे द्वारा राज-भक्ति का प्रचार करवाना चाहते हों।

अर्जुनदेवः—यह बात नहीं है। इसका रहस्य मुगल परम्परा से है। जहाँगीर ने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया था आज संभव है खुसरो भी उसी परंपरा का पालन करना चाहता हो। (मानसिंह और खुसरो का प्रवेश होता है और दोनों गुरु के चरणों में दण्डवत करते हैं) राजन्, प्रसन्न रहो। आज शहजादे के संग सेनापति का आगमन गुरुद्वारे में कैसे हुआ ?

मानसिंहः-गुरुदेव, आज हमारे सामने एक जटिल समस्या है। स्वर्गवासी सम्राट अकबर की राजनीति में हम लोगों ने एकता का जो स्वप्न देखा था वह अब सदैव के लिए समाप्त हो रहा है।

अर्जुनदेवः-हाँ, तुम्हारे जैसे विचार वाले कुछ मनुष्यों ने दो विरोधी तत्वों में सामञ्जस्य स्थापित करने की चेष्टा की थी, परन्तु तुम्हारा प्रयत्न असफल रहा। आज पुनः यवन भारतीय संस्कृति को कुचलने के लिए तत्पर हैं। तुम लोगों ने मुगल सत्ता के अन्तरंग भाग में प्रवेश कर धर्म की रक्षा करने का प्रयत्न किया था और इस प्रयत्न में तुमने सफलता भी प्राप्त की थी। अनेक देवालय नष्ट-भ्रष्ट होने से बचा लिए गए, भारतीय ललनाओं के सतीत्व एवं हमारी शिखाओं की कुछ काल के लिए रक्षा हो गई। यह ही क्यों स्वयं अकबर तक ने हमारी संस्कृति को अपनाने का ढोंग किया। परन्तु यह तो अकबर का साम्राज्यवाद था, और तुम्हारी नीति अवसरवाद की प्रतीक थी। अवसरवाद कुछ काल के लिए सफल हो सकता है, किन्तु सदैव के लिए नहीं। भारतवर्ष को उस समय शत्रु का संरक्षण प्राप्त कर अपनी स्थिति दृढ़ बनाने की आवश्यकता

राजसिंहासन त्यागने की आज्ञा मिलेगी, तो मैं सहर्ष जनतन्त्र को शासन सौंप दूँगा। किन्तु गुरुदेव, शासन के परिवर्तन पर ही यह कल्पना सत्य हो सकती है। जब तक शासकवर्ग मुसलमानों का पक्ष लेता रहेगा, तब तक वे स्वयं को भारतीय जनता नहीं समझेंगे।

देवदत्त:–हो सकता है कि शासन में परिवर्तन के पश्चात् भी मुसलमान स्वतन्त्रता के विरुद्ध हों।

खुसरो:–मेरी समझ में ऐसा नहीं होगा। हाँ! कहीं-कहीं क्षणिक विद्रोह हो सकते हैं, परन्तु आर्थिक एवं भौगोलिक समस्या के कारण तुरन्त ही मुसलमान भी अपने को भारतीय प्रजा ही समझने लगेंगे। यदि इसबार खुसरो का विद्रोह दबा दिया गया, तो भारतवर्ष कई शताब्दियों तक परतन्त्र रहेगा और हिन्दू-मुस्लिम विरोध की आग हमेशा सुलगती रहेगी, जिसके कारण किसी अन्य विदेशी सत्ता को हमें पुनः गुलाम बनाने का अवसर मिल जायगा। सम्राट जहाँगीर बहादुर हैं, पूज्य हैं, न्यायी हैं, परन्तु दूरदर्शी नहीं हैं। भविष्य की कल्पना करना उनकी सामर्थ्य के बाहर है। वह मदिरा और नूरजहाँ में मग्न हैं। अतः मुझे विवश

होकर उनके विरुद्ध विद्रोह खड़ा करना पड़ रहा है, क्यों कि मैं जानता हूं कि वह न्यायी होने पर भी मुल्ला एवं मोलवियों के हाथ की कठपुतली ही बने रहेंगे। इसके अतिरिक्त मेरा अन्य कोई उद्देश्य नहीं है।

अर्जुनदेवः-खुसरो, तुम लोगों के आने से पूर्व ही हम पंचनद में युद्ध का शंख बजा चुके हैं। परन्तु बेटा, तुम्हारा अनुराग भारत और भारती के लिए कैसे बढ़ा ? एक मुसलमान युवक के हृदय में स्वतन्त्रता-प्रेम देखकर मैं दङ्ग रह गया।

खुसरोः-गुरुदेव, संस्कृत साहित्य के अध्ययन से मैं भारतीय संस्कृति के गुणों को समझने की चेष्टा कर रहा हूँ।

अर्जुनदेवः-माँ, क्या खुसरो के द्वारा तेरा उद्धार होगा ? बेटा मातेश्वरी के उद्धार के लिए अर्जुनदेव तुम्हारी धन-जन से सहायता करेगा। तुम मातृभूमि का उद्धार करो और अपने प्रयत्नों में सफल हो, यही तुम्हें मेरा आशीर्वाद है।

[खुसरो गुरु के चरणों में मस्तक नवाते हैं और अर्जुनदेव उनकी कमर थपथपाते हैं।]

* पट-परिवर्तन *

तृतीय दृश्य

(लाहोर के किले में सम्राट जहांगीर का दरबार हो रहा है। सम्राट स्वयं एक उच्च सिंहासन पर बैठे हुए हैं और अन्य सरदार अपने-अपने स्थान पर बैठे हुए हैं। गुरु अर्जुनदेव और खुसरो अभियुक्त के रूप में हथकड़ी-बेड़ी पहने खड़े हैं और सरकारी वकील उनपर अभि-य ग लगा रहा है।)

जालिमखाँ:-जहाँपना और सरदारों ! आज आपके सामने मुगल हुकूमत की तवारीख में सबसे ज्यादा संजीदा और खतरनाक मामला पेश हो रहा है यह तो आप लोग अच्छी तरह जानते हैं कि शहजादा खुसरो शहन्शाह अकबर के वक्त में ही हिन्दुस्तान के बादशाह बनने का ख्वाब देखते थे लेकिन शह-न्शाह अकबर ने खुसरो की सारी उम्मीदें मिट्टी में मिलादीं और जहाँपना जहाँगीर को अपना वारिस करार दिया। बस, उसी दिन से शहजादे ने बगा-वत का झण्डा खड़ा कर दिया और इस्लाम के दुश्मन कुछ काफिरों ने शहजादे की इस खतरनाक

काम में मदद की। इन काफिरों का नेता यह अर्जुन देव है, इसी ने शहजादे को इस काम के लिए भड़काया है। इसलिए दोनों मुजरिमों पर बादशाह के खिलाफ बगावत करने का मुकद्दमा चलाया जा रहा है। दोनों मुजरिम जहाँपना के सामने इन्साफ के लिए पेश किए गए हैं।

जहाँगीरः—क्या शहजादा उस पर लगाये गए जुर्म को ठीक समझता है ?

खुसरोः-हाँ. मैंने हिन्दुस्थान की भलाई के लिए एक खुली बगावत की है।

जहाँगीरः-और अर्जुनदेव ने क्या तुम्हारी इस बगावत में मदद नहीं की ?

खुसरोः-गुरुदेव जैसी शक्ति आजादी की लड़ाई से अपने आपको कैसे दूर रख सकती थी ?

जहाँगीरः--(अर्जुनदेव की ओर सङ्केत करता है) क्या इन काफीरों के साथ तुम अपने आपको भी गुलाम समझते हो ?

खुसरोः--अगर मेरे करोड़ों देशवासी गुलाम हैं, तो जहाँपना मुझे भी एक गुलाम ही समझें। जहाँपना हिन्दु-

स्थान की राजनीति में जब तक हिन्दू-मुसलमान का भेद बना रहेगा, यहाँ शान्ति स्थापित नहीं हो सकेगी।

जहाँगीर:--जहाँगीर बागी खुसरो से सियासी बातों पर सबक सीखना नहीं चाहता। (अर्जुनदेव की ओर घूमता है) अर्जुनदेव! क्या तुमने बादशाह के खिलाफ बगावत करने वाले को इमदाद पहुँचा कर, एक अच्छा काम किया है ?

अर्जुनदेव:--जहाँगीर किसी निर्णय पर पहुँचने से पूर्व विद्रोह का अर्थ समझने का अवश्य प्रयत्न करेगा।

जहाँगीर:--मैं मुजरिम की दलीलों पर जरूर गौर करूँगा।

अर्जुनदेव:-यह विद्रोह अर्जुनदेव और खुसरो का विद्रोह नहीं था। यवनों के क्रूर अत्याचारों से भारतीय संस्कृति अपना धैर्य खो चुकी है। अतः वह अन्याय के अन्धकार को विदीर्ण करने के लिए क्रान्ति के पथ की ओर अग्रसर हो रही है। इस क्रान्ति समुद्र के तीव्र प्रवाह को शान्त करने के लिए अकबर के समान सहस्रों मुसलमानों की आवश्यकता है। राष्ट्रीय क्रान्ति के युग में विद्रोह का संचालन करना तो मेरे लिए एक साधारण बात है, क्योंकि एक गुलाम राष्ट्र का निरंकुश सत्ता के विरुद्ध युद्ध संचा-

लन करना, उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। जहाँ-गीर! विद्रोह की इस ज्वाला को शान्त करने का केवल एक ही उपाय है, वह है खुसरो द्वारा निर्धारित जनतन्त्रवाद, जिसमें बहुसंख्यकों के अधिकारों का अधिक मूल्य है। यदि इस्लाम के नाम पर मुसलमानों के संकीर्ण विचार बहुमत को इसी तरह कुचलते रहेंगे तो भविष्य में मुगल साम्राज्य अपनी आत्म-हत्या कर लेगा। और······।

जहाँगीरः——पैरोकार सरकार को गवाह पेश करने की जरूरत नहीं है, क्यों कि मुजरिमों ने हमारी हस्ती के खिलाफ बग़ावत करने की बात को कबूल कर लिया है। अब हम इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि कुछ काफिरों ने उस हुकूमत को नीचा दिखाने की कोशिशें की हैं जिसकी नींव शहन्शाह बाबर के पाक हाथों द्वारा डाली गई थी। और उन काफिरों का पेशवा यह ढोंगी साधु है, जो हमको और हमारी ताकत को धमकियाँ दे रहा है। इन्होंने संगीन जुर्म किए हैं। हमारी हुकूमत को धक्का पहुँचाने के साथ ही साथ इन्होंने इस्लाम की तोहीन की है, जिसको कोई भी मुसलमान बर्दाश्त नहीं कर सकता। लेकिन खुदा ने इन्सान के दिल में रहम पैदा किया है जिसके जरिये

जहाँगीरः—— जल्लाद ! इस बागी खुसरो की ये बड़ी-बड़ी आँखे जो हमारी तरफ आग उगलना चाहती हैं, निकाल कर कल हमारे सामने पेश करो, इनको हम लाहौर के महलों में जड़वायेगे। अब हम आज का दरबार बरखास्त करते हैं।

(सम्राट के साथ सब खड़े हो जाते हैं)

* पट-परिवर्तन *

-:- चतुर्थ दृश्य -:-

(बुरहानपुर के जेलखाने की दृढ़ दीवारों में एक युवक धीरे-धीरे टहल रहा हैं। मझला कद, गौरवर्ण, लम्बे केश और शारीरिक गठन से कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति दृष्टिगोचर हो रहा है- जिसकी कान्ति क्षीण-सी हो रही है। जेलखाने के चारो ओर कड़ा पैरा तैनाथ है। जिस कमरे में यह २४ या २५ वर्ष का युवक टहल रहा है, वह फौलादी जङ्गले से घिरा हुआ है। कमरा बीस गज से ज्यादा लम्बा नही है, जिसमें बाँई ओर एक पलंग पड़ा है और इसी के निकट जल पीने के पात्र रक्खें हैं। शायद यह युवक जल पीना चाहता है- जब ही तो यह हाथो से दिवार के सहारे २ पलंग को खोज रहा है क्यों कि पलंग के ही सहारे जल पीने के पात्र रक्खे हुये हैं।)

बन्दीः——जिन्दगी का यह तमाशा, ऐ खुदा ! कितना अजब है ? कभी मैं गुलेबहार में बुलबुलेचमन बनकर तेरी खुशनुमा कुदरत में उड़ता फिरता, कभी इस डाल पर बैठता, कभी उस फूल पर झपटता। मगर आज जेल के सीखचों में पड़ा सड़ रहा हूँ। मेरा कौन ? (जल-पात्रों की ओर जाता हुआ पलंग की ठोकर खाकर गिर पड़ता है) आह !......आ... आ .....ह (घुटने से शोणित धार बहती है और घुटना पकड़ कर बैठ जाता है) हाय ! चश्म ! वे दुनिया को रोशन रखने वाले चश्म भी तो नहीं; जिससे मैं अपने जिस्म की सम्भाल कर सकूँ और बहा सकूँ दो बूँद आँसू। बहाओ, मुझ नाचीने की फूटी आँखों मोती से आँसू, नहीं तो खून के आँसू ही बहाकर इस दुनिया को खून में डुबो दो।

(खटिया पर पड़जाता है)

शेरसिंहः——(जेल के फाटक के बाहर) अरे !.....हैं ! भाई गयास ! कहाँ गया ?

गयासः——अजी जनाब, क्यों मेरी जान खाये जाते हो ? (सर पीटता है) तमाम दिन इधर से उधर मारा-मारा फिरता हूँ— टुकड़ा तक खाने को चैन नहीं। मेरी

जान को यह आफत और आपहां (बन्दी की ओर इङ्गित कर)

शेरसिंह:---अरे ! इतने तंग क्यों आरहे हो, आखिर कहो भी कहाँ जारहे हो ?

गयास:-----भट्टी में (हाथ से तश्तरियाँ रखकर) देखते नहीं, मेरे उस बाप को खाना देने जारहा हूँ- उस अन्धे को।

शेरसिंह-----शान्त भय्या, इतने नाराज न हो। मैं तो तुम से इस लिए पूछ रहा हूँ कि अभी-अभी उस जंगले से जोर से चिल्लाने की आवाज आई और एक धमाका भी हुआ।

गयास:----अजी रहने भी दो, चिल्लाता होगा वही अन्धा, बड़ा फैली है। उसके दिमाग से अभी शाही बू नहीं गई। अपने किये का नतीजा भोगता है।

शेरसिंह:----नहीं, नहीं, आज तुम यह क्या कह रहे हो गयास ! बेचारा। गयास, तुम देखते नहीं एक बहादुर की इससे बढ़कर और क्या बुरी अवस्था हो सकती है। निस-हाय, चक्षुहीन, एक दुर्बल पर कटे पक्षी की तरह एक-एक बूँद पानी के लिए तड़फ रहा है। हे भगवन्, कहीं यह सम्राट होता········।

गयासः——चुप रहो शेरसिंह ? तुम भोले हो, दीवारों के भी कान होते हैं। हमको अपनी बोलचाल के रंग-ढंग बदलने होंगे तब कहीं शायद......।

(यह कहता हुआ बंगले का फाटक खोलता है, फाटक खुलने की आवाज को सुन कर बन्दी खड़िया पर से उठ बैठता है।)

बन्दीः——कौन ?

गयासः——शहजादा !

बन्दीः——(आवाज पहिचान कर) गयास, तुम हमको शहजादा कहकर हमारी हँसी उड़ाते हो। मुझे अन्धा कहा करो, अन्धा। बताओ, मैंने अपने बाहूबल से क्या पाया ? कुछ मालूम है, खून की नदियाँ बहाने से क्या मिला ? केवल अन्धापन (बुढने के हाथ लगाकर) और खून, फिर अन्धे को अन्धा कहते क्यों डरते हो ?

गयासः——शहजादा !

बन्दीः——फिर वही शहजादा। अह......ह......अ (छूछी और घृणित हँसी हँसकर) अच्छा कहो, शहजादा। शहजादे के हाथ-पाँव बेड़ियों से जकड़ कर उसकी

आँखे फोड़ी गई, यदि उसके हाथ में तलवार होती ?
(तड़फ कर खड़ा हो जाता है, गयास बन्दी के कान में कुछ कहता है।)

गयास——आप खाना खालें (पलंग पर तस्तरी रखता है)।

बन्दी:——तुम कितनी देर में आओगे ?

गयास:——दो घन्टे में, जमादार की सम्भाल के बाद।

(गयास का प्रस्थान पलंग पर बैठा हुआ विचारमग्न अवस्था में)

बन्दी:——आखिर मेरे लिए अब इस संसार में रक्खा हो क्या है ? सर्वत्र अन्धकार। पर अन्धा हूँ तो क्या ...... निराश क्यों होजाऊँ। हिन्दुस्थान को एक ऐसे शासक की जरूरत है जो हिन्दू और मुसलमान दोनों से प्रेम करता हो। मेरे हृदय की अन्तरंग आँखें साम्राज्य को सच्चा मार्ग दिखलायेगी, जिसको वाह्य नेत्रोंवाला मदान्ध शासक स्वप्न में भी नहीं देख सकता। मेरे अन्धेपन से मेरी निजी दुनिया सूनी है, परन्तु प्रजा को तो ....हो सकता है सिक्ख और राजपूत एक बार फिर सहायता करें और ...।

(फाटक खुलने की आवाज और गयास और शेर-सिंह का अर्धरात्रि में प्रवेश।)

शेरसिंहः— और शहजादा शुभ मुहूर्त में देहली के सिंहासन को फिर शुशोभित करें। कितनी सुन्दर कल्पना है, हे भगवान् !

वन्दीः— केवल कल्पना ही नहीं प्रत्यक्ष भी हो सकता है।

गयासः— खुदा ऐसा ही करें।

वन्दीः— कोई नया संवाद।

गयासः— वहुत हैं।

वन्दीः— क्या ?

शेरसिंहः— अच्छे और बुरे दोनों। हमारा भेद दुशमन को लग गया है। हमें शाही हुकुम मिला है कि तुरन्त देहली चले आवें। और राजपूतों की सेना की एक टुकड़ी आपको मुक्त कराने शीघ्र ही आनेवाली है।

वन्दीः— सच !

शेरसिंहः— हाँ शहजादा !

वन्दीः— मेरे सच्चे दोस्तों, हृदय से प्रयत्न करो, केवल अच्छी कल्पना कर के तुम किसी के दुःख को दूर नहीं कर सकते। मनुष्य की महिमा सेवा करने में है, केवल ऊँचे-ऊँचे विचार करने में नहीं। सूर्य्य के गौरव का

हाथों में चली जाय जिसका जीवन कट्टर और मिथ्या रूढ़िवाद का शिकार बन रहा है, जो कठपुतली की तरह मुल्ला और मोलवियों के इंगित पर नाचता है।

खुर्रमः— खैर, कुछ भी हो तुम्हारे लिए शाही फरमान मिला है, उसको कान खोलकर सुनो (फरमान पढ़ता है ।

—:पत्रः—

मेरे बहादुर खुर्रम,

मुझे यकीन है कि हमेशा की तरह तुम वफादार साबित होवोगे । शाही हुकूमत तुमको इजाजत देती है कि किसी भी तरह बागी खुसरो का कत्ल जल्दी से जल्दी कर डालो। इसके लिए जिम्मेदार हूँ।

शहनशाहयेहिन्द
जहाँगीर ।

खुर्रमः— बोलो क्या चाहते हो ?

बन्दीः— मैं चाहता हूँ शान्ति········ ।

खुर्रमः— वह कैसे मिल सकती है ?

बन्दीः— वह मिल सकती है । लाओ मुझे तुम्हारी शमशेर दो जिसने अंगारे के समान भभकती हुई सलाइयों से

मेरे नेत्र फोड़े हैं। उसको लिखदो कि तुम्हारा पुत्र ······नहीं······ नहीं तुम्हारे दुशमन खुसरो ने आत्म-हत्या करली। लाओ, मेरे दुखी दिल को शांति पहुँचाने के लिए खुदा के नाम पर यह शमशेर देदो।

खुर्रमः— हूँ, ऐसा कभी नहीं हो सकता। मैं अपने हाथों से तुझे कत्ल कर सारे हिन्दुस्तान को बतला दूँगा कि किस तरह से एक भाई हँसते-हँसते अपने बागी भाई का सर धड़ से अलग कर सकता है।

बन्दीः— एक निर्दोष के खून से हाथ रंगकर अपने सर पर क्यों बोझ बढ़ाता है, मैं तो खुद ही मरने को तैय्यार हूँ। मेरे न चाहने पर भी जहाँगीर और खुर्रम भावी इतिहास में मेरे पिता और भाई रहेंगे किन्तु इतिहास ही निर्णय करेगा कि उनका सम्बन्ध मानवता और मानव-हृदय का एक नग्न एवं क्रूर दृश्य है। हे मादरे हिन्द! तेरे बच्चे सत्य, न्याय और वतन की सेवा के लिए अपने प्राण हँसते-हँसते बलिवेदी पर चढ़ा सकते हैं, तू उन्हें ताकत दे।

खुर्रमः— बस मत बको, मैं तुम्हें अभी ताकत देता हूँ। लो दोस्त, मौत के लिये तैयार हो जाओ, बहुत पुराना

काँटा आज साफ होगा। हाः हाः हाः (हँसता है)।

बन्दीः— या खुदा !

(खुर्रम अपनी तलवार बाहर निकालता है और खुसरो की गर्दन पर प्रहार करता हुआ दिखाई देता है)

* पटाक्षेप *

सौभाग्य-सिन्दूर

पात्र-परिचय

पुरुष पात्र

१—मुं० शालिगराम

२—बसंत

स्त्री पात्र

३—सुशीला (शालिगराम की धर्मपत्नी)

४—लक्ष्मी (शालिगराम के भाई की बेटी)

५—माधुरी (लक्ष्मी की माता)

सौभाग्य-सिन्दूर

(बाजार के नुक्कड़ पर एक महल के झरोके में मु० शालिग-
राम मोढ़े पर बैठे हुए हुक्का पी रहे हैं। उनके सामने
उनकी धर्मपत्नी फर्श पर बैठी हुई छालिया
कतर रही है। एक चार-पाँच वर्ष की
लड़की महल की एक खिड़की
से बाजार का तमाशा
देख रही है।)

सुशीला:— झुको नहीं बेटी, गिर पड़ोगी। कितनी बार कह चुकी हूँ कि इन होली दरवाजे के समान खिड़कियों के लग्गे लगवा दो, पर मेरी यहाँ सुनता ही कौन है ! (लड़की दौड़कर शालिगराम की गोद में आकर बैठ जाती है और वह उसके मुलायम बालों पर अपना हाथ फेरते हैं) पुराने आदमी मकान की खिड़कियाँ छोटी बनवाते थे, इससे मकान की अदन

रहती थी। तमाम घर को तुड़ा-फुड़ा कर मैदान बना दिया। यदि तुमको पैसा ही पानी की तरह बहाना है, तो पुण्य-धर्म करो। इस तोड़-फोड़ में क्या रक्खा है, सब यहाँ ही एक दिन रह जाने हैं!

शालिगराम–बस, अपना उपदेश बन्द करदो। बेटी, (पत्नी की ओर इशारा करते हैं) क्या तुम्हें अपनी ताई अच्छी लगती है ? (लड़की संकोच से गर्दन हिलाती है) और बसन्त कैसा लगता है ?

लक्ष्मीः— बसन्त चाचा बहुत अच्छे हैं।

शालिगराम–क्यों ?

लक्ष्मीः— वह कनकट्टे से मोटल गाड़ी लायेंगे। हमको मिठाई खिलाते हैं। (शालिगराम जोर से हँसते हैं)

सुशीलाः— क्या कहती है ? (छालिया कतरना बन्द करती हुई)

शालिगराम–कहती है वह कनकट्टे से मोटल गाड़ी लायेंगे और हमको मिठाई खिलाते हैं। (दोनों पुनः हँसते हैं)।

सुशीलाः— लाली, तुम्हारे ताऊजी तो बहुत खराब हैं।

लक्ष्लीः— हमाले ताऊजी सब से अच्छे हैं। (शालिगराम प्यार करते हैं)

[शालिगराम एक गहरी निश्वास खींचते हैं और उनके नेत्रों से दो बूँद आँसू टपक पड़ते हैं।]

शालिगराम—(भर्राई हुई आवाज से) अब तुम्हें कोई नहीं पीटेगा, बेटी।

लक्ष्मी—— ताऊजी। तुम लोते क्यों हो?

शालिगराम—कहाँ रोता हूँ बेटी? (कुछ हँसने का प्रयास करते हैं)

लक्ष्मी—— ताऊजी, अम्मा बिन्दा क्यों नहीं लगाती? ताई भी तो लगाती है।

शालिगराम—हे भगवान्! इस भोली बच्ची को क्या कहूँ, कैसे समझाऊँ? (नेत्रों से आँसू टपक पड़ते हैं।)

लक्ष्मीः——ताऊजी आज आप लोते क्यों हैं?

शालिगराम—(दुपट्टे से आँसू पोंछते हैं और पुनः हँसने का प्रयास-सा करते हैं) लो तुम्हें मिठाई दें। आज तुम्हारी वह गुड़िया कहाँ गई? अच्छा लो, तुम्हें रबर की गेंद मँगादें।

[सुशीला जोर-जोर से रोने लगती है और शालिगराम बच्ची को गोद में लेकर बाहर जाना चाहते हैं। इसी क्षण बसन्त का प्रवेश होता है)

वसन्त—क्यों भाभी ?

सुशीला—कुछ नहीं बेटा ? (आँसू पोंछती है)

वसन्त—(लक्ष्मी की ओर देख कर) आओ लक्ष्मी ! तुम को कलकत्ते के खिलौने दें ।

लक्ष्मी—आहा, हम तो कनकट्टे के खिलोने लेंगे ।

(शालिगराम की गोद से नीचे उतर पड़ती है और चारों पुनः हँसते हैं)

* पट-परिवर्तन *

द्वितीय दृश्य

(एक आधुनिक ढंग का कमरा है । जिसमें भारतीय परिवार के योग्य कई चित्र लग रहे हैं । एक ओर काच की आलमारी में पुस्तकें रक्खी हुई हैं और इसी के पास एक टेबिल पर दर्पण है । इस दर्पण के सामने खड़ी-खड़ी एक युवती अपने बालों को कंघी से संवार रही है । स्त्री के समीप ही एक लड़की खड़ी है जो उसकी साड़ी खींच रही है ।

लक्ष्मी:—अम्मा ! तुम हमाले बाल तो इस तरह नहीं बनाती?

माधुरी:——अभी बनाती हूँ । हाँ, पर आज तेरे बाल खराब बनाऊँगी ।

लक्ष्मी:——उँह...उँ उँ...उँ..मै चाचा से कहती हूँ ।

(लक्ष्मी रोते हुये वहाँ से जाना चाहती है, परन्तु माधुरी उसे गोद में उठा लेती है ।)

माधुरी:-- आओ ! मेरी लाली के ऐसे सुन्दर बाल बनाऊँ कि सब देखते ही रह जाँय ।(कघे से बाल बनाती है और चुम्बन लेती है) कितने सुन्दर बाल बने हैं मेरी लाली के? क्या अम्मा अब भी खराब है?

लक्ष्मी:— नहीं, अब मैं ताऊजी से कहूँगी, " हमाली अम्मा बहुत अच्छी है ।"

माधुरी:-- मेरी रानी, कितनी अच्छी है ? (चुम्बन लेती है)

लक्ष्मी:— हाँ ! हाँ ! हमाली अम्मा ने आज नई साली पहनी है । (ताली बजा कर हँसती है)

माधुरी:-- इस साड़ी से क्या मैं सुन्दर लगती हूँ ?

लक्ष्मी:— हाँ, तुम बहुत छुन्दल लगती हो।

माधुरी:-- (दर्पण में अपना मुख देखती है) बेटी ! आज मैं

सचमुच बहुत सुन्दर लगती हूँ। (स्वगत) क्या सौभाग्य-विहीन स्त्रियों के लिये अधिक सुन्दर होना अभिशाप है? बिरादरी की स्त्रियाँ और लोग-बाग देखेंगे तो क्या कहेंगे? वे अपनी उँगलियों से मेरी ओर संकेत करेंगे और कहेंगे कि मुं० शालिगराम के भाई की विधवा बहू कैसी बन-ठन कर चली है। हे भगवान, वैधव्य जीवन और अधिक लावण्य में घृत और अग्नि का-सा सम्बन्ध है। परन्तु, क्या विधवा के हृदय नहीं है? क्या वह मानवी सृष्टि में निर्जीव होकर रहने के लिये उत्पन्न की गई है? झूठी लोक-लज्जा के चक्कर में पड़ कर मैंने अपने कमल से हृदय को कुचल दिया। अब पुनः उस कुचले हुये फूल में प्रकृति की सहायता से स्फूर्ति आ रही है, तो इसमें मेरा क्या दोष? मैं आज इस थोथी लोक-लज्जा को सदा के लिए मिटा दूंगी (एक ट्रङ्क में से एक रेशमीन जाकिट निकाल कर पहिनती है और मुख पर क्रीमादि सुगन्धित पदार्थों का मर्दन करती है और समीप ही रक्खे हुये शृङ्गारदान से सिंदूर की शीशी उठाती है और अपने ललाट पर सिन्दूर लगाने को उद्यत होती है।)

लक्ष्मीः— हाँ, लगालो माँ, तुम बड़ी सुन्दर लगोगी।

(माधुरी का हाथ ललाट के पास जाते ही रुक जाता है और उसकी दृष्टि सहसा अपने पति के चित्र पर जाकर डट जाती है।)

माधुरीः — हा नाथ ! मेरी माँग में सिन्दूर तो आपके साथ थी। हाय ! मैं क्या करने जारही हूँ ? देव मुझे क्षमा करो। सिन्दूरदान हाथ से जमीन पर गिर पड़ता है।)

लक्ष्मी— अम्मा, आज तो बिन्दा लगालो।

माधुरी:—नहीं बेटी, मेरी सिन्दूर भगवान् ने सदैव के लिए मिटा दी। हाय मेरा सौभाग्य······ ।

(बसन्त का प्रवेश)

बसन्त:— भाभी, भाभी, मोटर आगई, जल्दी करो। लक्ष्मी ! अरे तुम यहाँ क्या कर रही हो ? भाभी, रोती क्यों हो ? क्या सिनेमा देखने नहीं चलोगी ?

माधुरी:-- नहीं।

बसन्त;— कारण ?

माधुरी:-- बसन्त ! तुम भोले हो। तुम सब लोग चाहते हो कि भाभी अपना दुखड़ा सदा के लिये भूल जाय। इसके लिये तुम सब प्रयत्न भी करते हो और मैं भी करती हूँ, परन्तु बसन्त तुम्हारी भाभी का हृदय एक मनुष्य का हृदय है।

वसन्त-:—रोओ मत भाभी ! लक्ष्मी भी ...... ।

(वसन्त के नेत्रों में आँसू भर आते हैं ।)

माधुरी:—मेरे लाल ! मैं नहीं रो रही हूँ, मेरी अन्तरात्मा चिल्ला रही है, वह पुकारती है-'कहाँ हो प्रियतम'?

वसन्त:—भूल जाओ भाभी ! उन स्वप्नों को ।

माधुरी:—भूल जाऊँ, क्या कहते हो वसन्त ? जिस छवि का प्रतिविम्ब जीवन के प्रत्येक अंश पर गिर चुका है, तुम ही बताओ मैं कैसे भूल जाऊँ ? (रोती है)

वसन्तः—भाभी ! .... ।

माधुरी:—मुझे कहते हो कि भूलजा और अपने हृदय की चोट को नहीं सम्भालते । मैं देख रही हूँ कि वसंत से वसन्त जा रहा है; उसकी वीणा के तारों से अब मधुर झंकार नहीं उठती । चेहरे की लालिमा भी फीकी पड़ गई है और जब एक भाई अपने भाई को नहीं भूल सकता, तब एक पत्नी अपने प्रियतम की स्मृति कैसे भूल जाय ? एक नारी के हृदय को टटोलो वसन्त !(रोती है)

वसन्त—(नेत्रों में आँसू भर कर) भाभी ! शान्त, लक्ष्मी रोती है। (लक्ष्मी जोर-जोर से रोने लगती है।)

माधुरी:—बसन्त ! बसन्त !! मुझे रोको मैं गिरी……(धड़ाम से गिर पड़ती है, साड़ी की फटकार से टेबिल पर पड़ा हुआ आयना भी गिर कर चकनाचूर हो जाता है, जिसके फलस्वरूप माधुरी के हाथ से खून बहने लगता है।)

बसन्तः—हाय ! यह क्या हुआ ? अरे खून भी……।
(माधुरी के नीचे से काच हटाता है)

लक्ष्मी: ताऊजी, ताई, ताई……(चिल्लाती है।)

(शालिगराम दौड़ कर घटनास्थल पर आते हैं)

शालिगराम–क्या है लाली ? अरे यह क्या हुआ ?

(माधुरी के हाथ से खून बहता हुआ देख कर अचम्भा करते हैं और बसन्त की ओर जिज्ञासा से देखते हैं।)

वसन्तः— चक्कर आगया।

शालिगराम-खून !

वसन्तः— —काच चुभ गये ।

शालिगरामः—अरी कहाँ हो ? वसन्त तुम जाओ ! तुरन्त डाक्टर को लेआओ, मैं यहाँ हूँ ।

सुशीलाः—यह क्या हुआ ? (बहू को उठाती है और उसका सर अपनी गोद में रख लेती है)

शालिगरामः-(रोती हुई लक्ष्मी को गोद में उठाते हैं) आ बेटी ! तेरी अम्मा अभी ठीक होती है ।

लक्ष्मीः—ताऊजी, अब हमाली अम्मा कभी छिन्दूल नहीं लगावेगी । (शालिगराम और सुशीला दोनों रो पड़ते हैं)

* पट-परिवर्तन *

❀ तृतीय दृश्य ❀

(संगमरमर से जड़े हुए एक छोटे से मन्दिर में एक चाँदी के सिंहासन पर राधा-कृष्ण की प्रतिमाएँ विराजमान हो रही हैं । समीप ही एक स्त्री आसन पर बैठी हुई भजन गा- रही है ।)

माधुरीः— भजन।

मैं हरि पतितपावन सुने।
मैं पतित, तुम पतितपावन, दोउ बानक बने॥
व्याध, गनिका, गज, अजामिल साखि निगमनि भने।
और अधम अनेक तारे, जात कापै गने?
जानि नाम अजानि लीन्हें नरक जमपुर मने।
दास तुलसी शरन आयो राखिए आपने॥

गोपाल! मेरी आत्मा में बल दो, जिससे मैं एक भारतीय विधवा नारी का-सा सफल जीवन व्यतीत कर सकूँ। मोहिनी अपने जीवन को विधवा विवाह करके शान्त करेगी, परन्तु मैं तो आपकी शरण में आ गई हूँ। मैं अब आप से प्रेम करती हूँ। मैंने अपना यौवन आपके चरणों में भेंट चढ़ा दिया है। मेरा मार्ग कण्टकाकीर्ण है। देखना! मेरी आत्मा सांसारिक प्रपंच में फँसकर निर्बल न हो जाय। (युगलमूर्ति को दण्डवत करती है और लक्ष्मी का प्रवेश होता है)

लक्ष्मीः—अम्मा! क्या आज हमको परसाद नहीं मिलेगा?

(वसन्त का प्रवेश)

वसन्तः—भाभी, क्या हमको भी तुम्हारे ठाकुरजी का आज प्रसाद मिलेगा?

माधुरीः—पहले लक्ष्मी को मिलेगा क्योंकि इसने तुमसे पहले माँगा है। (लक्ष्मी और बसन्त को प्रसाद देती है और दोनों ही प्रसन्न होकर खाते हैं।)

लक्ष्मीः—अम्मा, तुमने फिर आज बिन्दा नहीं लगाया।

माधुरीः—बड़ी नट-खट लड़की है, कभी बात को भूलती ही नहीं। आ! आज तू ही अपने हाथ से मेरे बिन्दा लगा दे। (मन्दिर में से चन्दन की कटोरा उठाकर लक्ष्मी को सौंपती है और वह अपनी उँगली में चन्दन लेकर अपनी माँ के ललाट पर लगाती है और प्रसन्न होती है)

लक्ष्मीः—अम्मा, तुम लाल सिन्दूर क्यों नहीं लगाती ?

माधुरीः—मुझे अच्छी नहीं लगती है!

लक्ष्मीः—मुझे बहुत अच्छी लगती है।

माधुरीः—अच्छा, जब तू बड़ी होगी तो मैं नित्य तेरी माँग में लाल सिन्दूर भरा करूँगी।

लक्ष्मीः—हा! हा! अम्मा मेरी माँग में लाल-सिन्दूर भरेगी।

बसन्त—भाभी, क्या स्त्री के लिए सिन्दूर ही सब कुछ है ?

माधुरीः—भारतीय नारी के लिए सिन्दूर ही उसके सौभाग्य की प्रतीक है।

बसन्तः—भाभी, तुम इस कुटुम्ब की डूबती हुई नौका को अपनी तपस्या की पतवार से पार लगा रही हो।

माधुरीः—जो कुछ करते हैं भगवान् करते हैं। मनुष्य क्या कर सकता है।

बसन्तः—धन्य!

माधुरीः—अब ठाकुरजी शैन करेंगे (माधुरी पड़दा खींचती है, बसन्त और लक्ष्मी प्रस्थान करते हैं)

* पटाक्षेप *

मोटर-साइकिल

पात्र-परिचय

पुरुष पात्र

१—रमाकान्त

२—हरिश्चन्द्र (रमाकांत का मित्र)

(स्त्री पात्र)

३—रमा (रमाकांत का धर्मपत्नी)

मोटर-साइकिल

(एक साफ सुथरा आधुनिक ढङ्ग का कमरा है। कमरे में दो-तीन कुर्सियाँ पड़ी हैं। एक कुर्सी पर एक युवती बैठी-बैठी किताब पढ़ने का बहाना-सा कर रही है। स्त्री बिलकुल आधुनिक ढङ्ग की वेष-भूषा में है और नेत्रों में ऐनक लगा रक्खा है। इसी कमरे में एक खद्दर-धारी युवक टहल रहा है और टहलते-टहलते स्त्री से बात-चीत भी करता जाता है।)

रमाकान्तः—मैं यह सहन नहीं कर सकता रमा, तुम मेरे प्रत्येक कार्यों में हस्तक्षेप करती हो।

रमाः——क्यों जी, हस्तक्षेप क्यों न करूँ ? आपने मेरे साथ विवाह क्यों किया था ? क्या मैं आपकी सहधर्मिणी नहीं हूँ ?

रमाः——यदि कोई पददलित-समाज अपने उद्धार के लिए कुछ चेष्टाएँ करता है, अपनी आवाज बुलन्द करता है, तो उसे विद्रोही क्यों समझा जाता है ?

रमाकान्तः—जिस जाति को जन्मदात्री होने का सौभाग्य है, जो जननी बनने की अधिकारिणी है, वह कदापि अपनी सृष्टि के विरुद्ध विद्रोह नहीं कर सकती। सीता, सावित्री और पद्मिनी आदि क्या स्त्रियाँ नहीं हैं ? क्या उनके चरित्रों से हमारे निर्बल हृदयों को प्रेरणा नहीं मिलती ? ईश्वर की ऐसी अमूल्य सृष्टि का क्या कभी अनादर हो सकता है ?

रमाः——अच्छा, आप सच्चे और सब झूठे। आपका मत सदैव व्याख्यानों में तो स्त्री-जाति की उन्नति के पक्ष में रहता है और घर पर व्यवहार में आप सर्वथा अपने कथन के विपरीत आचरण करते हैं।

रमाकान्तः—मैं स्त्री-जाति का अहित न घर में चाहता हूँ, न बाहर। परन्तु प्रत्येक वस्तु की सीमा होती है, मर्यादा होती है। मैं अपने निजी अनुभव के आधार पर इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि साधारण नारियाँ तड़क-भड़क रखने वाली स्त्रियों से अधिक आचरण में शुद्ध हैं और उनके द्वारा हमारी

प्राचीन संस्कृति की रक्षा हो रही है। मेरे व्याख्यानों का सम्बन्ध अपनी आजीविका से है, अपनी रोटी से है। अतः इस सम्बन्ध में तुम्हें समझ लेना चाहिए कि हाथी के दाँत दिखाने के और होते हैं और खाने के और। मैं महिला-सेवा-समिति के प्रचार-विभाग का मन्त्री हूँ। अतः स्त्रियों के अधिकारों के लिए लड़ना, ऐसेम्बली में उनकी उन्नति के लिए बिल पास कराना और लम्बे-लम्बे व्याख्यान झाड़ना मेरे मुख्य काम हो जाते हैं। और इसी कार्य का मुझे ५००) मासिक वेतन मिलता है।

रमाः—— मैंने आज जाना है कि ये सफेदपोश डुपट्टेधारी पण्डित भी बुगला-भक्त ही होते हैं। यदि श्रीमान् विवाह से पूर्व ही अपने उद्‌गार प्रकट करते तो''।

रमाकान्तः-तो फिर एक ग्रेजुएट महिला को उचित शिक्षा कैसे मिलती ? श्रीमती जी कान खोल कर सुन लीजिए, आज से हमारे घर में साबुन के बजाय खार प्रयोग में लाया जायगा. सुगन्धित तेल के स्थान में कड़वा तेल या घी होगा, रेशमीन बारीक साड़ियों की जगह खद्दर की साड़ी पहिननी पड़ेगी और दोनों वक्त चाय के बजाय श्री भगवान् का चरणामृत ही पान करना

रमाः——यदि कोई पददलित-समाज अपने उद्धार के लिए कुछ चेष्टाएँ करता है, अपनी आवाज बुलन्द करता है, तो उसे विद्रोही क्यों समझा जाता है?

रमाकान्तः—जिस जाति को जन्मधात्री होने का सौभाग्य है, जो जननी बनने की अधिकारिणी है, वह कदापि अपनी सृष्टि के विरुद्ध विद्रोह नहीं कर सकती। सीता, सावित्री और पद्मनी आदि क्या स्त्रियाँ नहीं हैं? क्या उनके चरित्रों से हमारे निर्बल हृदयों को प्रेरणा नहीं मिलती? ईश्वर की ऐसी अमूल्य सृष्टि का क्या कभी अनादर हो सकता है?

रमाः——अच्छा, आप सच्चे और सब झूठे। आपका मत सदैव व्याख्यानों में तो स्त्री-जाति की उन्नति के पक्ष में रहता है और घर पर व्यवहार में आप सर्वथा अपने कथन के विपरीत आचरण करते हैं।

रमाकान्तः—मैं स्त्री-जाति का अहित न घर में चाहता हूँ, न बाहर। परन्तु प्रत्येक वस्तु की सीमा होती है, मर्यादा होती है। मैं अपने निजी अनुभव के आधार पर इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि साधारण नारियाँ तड़क-भड़क रखने वाली स्त्रियों से अधिक आचरण में शुद्ध हैं और उनके द्वारा हमारी

रमाः—— कौन मैं ?

रमाकान्तः-हाँ, हाँ, तुम ही तो……।

रमाः——यह तो एक साधारण-सा प्रस्ताव है।

रमाकान्तः-क्या ?

रमाः——मैं आज आपके साथ आपकी मोटर-साइकिल के लगेज पर बैठ कर बाजार में घूमना चाहती हूँ।

रमाकान्तः- परन्तु…………।

रमाः—— परन्तु, मैं ठीक ड्रेस में नहीं हूँ, क्यों यही न ? मैं अभी साड़ी बदल कर आती हूँ।

रमाकान्तः-जरा सुनो भी ! (कान में कुछ कहते हैं)

रमाः——(क्रोधित होकर) आपकी यह सब चकमेबाजी है, आप मेरा दिल दुखाना चाहते हैं। परन्तु आप यहाँ से अब एक इञ्च भी नहीं हट सकते। यदि आपने मुझे यहाँ छोड़ कर जाने का प्रयत्न किया तो मैं दीवार से अपना सर तोड़कर अपने प्राण दे दूँगी।

(नेत्रों में आँसू भर आती है)

रमाकान्तः-लो, आज तो मान जाओ, मुझे क्षमा कर दो, मैं तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ। (बाहर से ठीक इसी

होगा । टैनिस के खेल का पूर्णतया बहिष्कार होगा और हम किसी सवारी की सहायता न लेकर अपने चरणों की ही सहायता लेंगे । नमस्ते ! (एक कोने में पड़ी हुई बैंत को उठा कर जाना चाहते हैं, परन्तु रमा अपनी पुस्तक को एक अन्य कुर्सी पर पटक देती है और पण्डितजी का कुड़ता पकड़लेती है।)

रमाः—— आप मुझे छोड़कर कदापि बाहर नहीं जा सकते हैं । आपको भी मेरे साथ-साथ व्याख्यान देना, सभा-सोसाइटियों में जाना, सिनेमा देखना और अपनी नई मोटर साइकिल का प्रयोग करना सर्वदा के लिए छोड़ना पड़ेगा ।

(कुछ मुस्कराती है)

रमाकान्तः—रमा ! तू कितनी भोली है ? क्या बी० ए० पास करने से भी तुझे समझ नहीं आई ।

रमाः—— आप ही तो लोगों से कहा करते हैं कि मैं बहुत समझदार हूँ ।

रमाकान्तः—चल हट, किसी तरह काबू में ही नहीं आती । न तर्क से समझती है, न डर से । सच है, बड़े-बड़े व्याख्यानदाताओं के मुख घर में स्त्री के सम्मुख बन्द हो जाते हैं । आख़िर तुम चाहती क्या हो ?

रमा:—— कौन मैं ?

रमाकान्त:-हाँ, हाँ, तुम ही तो······ ।

रमा:——यह तो एक साधारण-सा प्रस्ताव है ।

रमाकान्त:-क्या ?

रमा:——मैं आज आपके साथ आपकी मोटर-साइकिल के लगेज पर बैठ कर बाजार में घूमना चाहती हूँ ।

रमाकान्त:- परन्तु········ ।

रमा:—— परन्तु, मैं ठीक ड्रेस में नहीं हूँ, क्यों यही न ? मैं अभी साड़ी बदल कर आती हूँ ।

रमाकान्त:-जरा सुनो भी ! (कान में कुछ कहते हैं)

रमा:——(क्रोधित होकर) आपकी यह सब चकमेबाजी है, आप मेरा दिल दुखाना चाहते हैं । परन्तु आप यहाँ से अब एक इञ्च भी नहीं हट सकते । यदि आपने मुझे यहाँ छोड़ कर जाने का प्रयत्न किया तो मैं दीवार से अपना सर तोड़कर अपने प्राण दे दूँगी ।

(नेत्रों में आँसू भर लाती है)

रमाकान्त:—लो, आज तो मान जाओ, मुझे क्षमा कर दो, मैं तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ । (बाहर से ठीक इसी

समय किसी के आने की आहट सुनाई पड़ती है।)
कौन है रे? बिना इजाजत ... ... कौन है रे?
(घबरा जाते हैं और चहरा फीका पड़ जाता है
और एक महाशय सहसा सम्मुख आजाते हैं) ओह!
यह तो हरिश्चन्द्र है, आइए, आइए।

हरिश्चन्द्रः—भाभी! आज हमारे पंडितजी ने ऐसा कौनसा अपराध कर लिया, जो...।

(रमा मारे शर्म के अपना मुख नीचा कर लेती है)

रमाकान्तः—तुम बड़े चालाक हो जी, कैसे मौके पर अन्दर घुस पड़े!

हरिश्चन्द्रः—रहने दीजिए रमा बाबू, १५ मिनिट से बराबर चिक के सहारे खड़ा-खड़ा पुकार रहा हूँ, परन्तु मेरी सुनता कौन था। यहाँ तो अङ्गद-रावण-संवाद हो रहा है, जिसमें भाभी साहब अंगद का काम कर रही है।

रमाकान्तः—याने, १५ मिनिट से तुम हमारा झगड़ा सुन रहे हो।

हरिश्चन्द्रः—इसमें क्या संदेह है? मित्र! ऐसी छोटी-छोटी बातों पर झगड़ना आप दोनों को शोभा नहीं देता। ऐसे छोटे-छोटे झगड़े ही बढ़ते-बढ़ते एक दिन जीवन-सागर में भयंकर तूफान खड़ा कर देते हैं, जिसमें

गृहस्थ की नाव फँस जाती है। इसका परिणाम होता है विनाश। मैंने अपने छोटे से जीवन में यह भी देखा है कि विद्वानों के कथन का वास्तविक मन्तव्य तर्कों के आडम्बर में छिप कर प्रायः लुप्त हो जाता है। मैं एक साधारण व्यक्ति आप दोनों के हृदय की बात को सरलता से समझ गया, परन्तु आप दोनों समीप रहते हुए भी एक दूसरे को नहीं समझ सके।

रमाकान्तः—तुम क्या समझ गए ?

हरिश्चन्द्रः—आप दोनों के हृदय में एक सीधी-सी बात पर भ्रम होगया है। आपने एक मोटर साइकिल खरीदी है। भाभी ने इस मोटर साइकिल को बिल्कुल पसन्द नहीं किया और उसने इसमें अपना अपमान समझा। वह यह बात सहन नहीं कर सकती कि आप तो मोटर साइकिल पर सवार होकर घूमें-फिरें और वह किराये के ताँगों में ही सफर करे। अतः धीरे-धीरे इसी वस्तु ने ईर्षा का रूप धारण कर लिया और आप दोनों के हृदयों में कुछ मन-मुटाव रहने लगा, जिसका परिणाम यह आज का झगड़ा है। आप इस मोटर साइकिल को वेचकर एक वेबी आस्टिन क्यों नहीं खरीद लेते, जिससे दोनों का काम

सरलता से चल जाया करे। क्यों भाभी यही बात है न?

रमाः——इससे आपका मतलब ''?

रमाकान्तः—लेकिन हजरत! तुम भाँप कैसे गए?

हरिश्चन्द्रः-पण्डित साहब! आजकल मैं वह विद्या सीख रहा हूँ, जिसकी सहायता से सूरत देखते ही दिल का हाल मालूम कर लेता हूँ।

रमाकान्तः—भाई हरिश्चन्द्र! मैं नहीं जानता था कि रमा के हृदय पर मोटर-साइकिल के खरीदने से ऐसा प्रभाव पड़ेगा। और तुम यह भी जानते हो कि मैं उन व्यक्तियों में नहीं हूँ, जिन्होंने अपनी बीबियों को पाकिट डिक्सनेरी बना रक्खा है। मैं स्त्रियों के स्वाभाविक अधिकारों को भी कुचलना नहीं चाहता। आज से यह मोटर साइकिल रमा की है—वह चाहे तो स्वयं चढ़ सकती है या वह इसे··· उसको पूर्ण अधिकार है।

रमाः—— हरि बाबू! क्या तुम हमारी मोटर साइकिल बिकवा सकते हो? हमने इसको ब्लेक मारकेट से २,५००) में खरीदी है।

हरिश्चन्द्रः-बात यह है कि मेरे एक मित्र हैं, जो मोटर-साइ-किल खरीदना चाहते हैं, उन्होंने मुझे इस काम के लिए रूपये भी दे दिये हैं। और मैं यहाँ इस काम में सहायता लेने के लिए पंडितजी के पास आया था। यदि तुम अपनी गाड़ी बेचना चाहो तो यह लो। (अपनी जेब से २५००) रुपये का चैक निकाल कर रमा की ओर बढ़ाते हैं, रमा रमाकान्त की ओर देखती है।)

रमाकान्तः—यदि तुमको बेचना ही है तो ले लो। (रमा चैक ले लेती है और हरिश्चन्द्र के साथ बाहर जाती है।) क्या यह हरिश्चन्द्र और रमा का षडयन्त्र है ? यदि रमा को बात इस समय मैं काट देता तो, इस घर में मैं एक क्षण भी चैन से नहीं रह सकता था। परन्तु इस प्रकार स्त्री के वश में होकर मैं कहाँ तक अपना तिरस्कार कराता रहूँगा ? इसका उपाय मुझे शीघ्र ही ढूँढना होगा और आज ही··क्या हम विनाश के पथ पर चले जाँयगे ? क्या हरिश्चन्द्र मित्रों में मेरी हसी नहीं उड़ावेगा ? जब मेरी मोटर साइकिल पर हरिश्चन्द्र चढ़कर बाजार में निकलेगा और मैं पैदल चलता हुआ दिखाई दूँगा तो लोग-बाग क्या कहेंगे ?

निश्चय ही रमा की बुद्धि हमको विनाश के पथ की ओर ले जा रही है। अवश्य कुछ दाल में काला है, परन्तु अब क्या ? गृह-युद्ध छिड़ चुका है, भगवान् ही मालिक हैं..... । (रमाकान्त अपनी बेंत उठाकर बाहर जाने लगते हैं और रमा उनको मार्ग में मिलती है; वह उनको चैक देती है, रमाकान्त चैक को फेंक देते हैं और तीर की तरह एक क्षण में घर से बाहर निकल जाते हैं और रमा स्तम्भित रह जाती है ।)

रमा:——(स्वगत) वे चले गए, उन्होंने चैक फेंक दिया ? हरिश्चन्द्र ने कहा था, "छोटे-छोटे झगड़े हो बढ़ते-बढ़ते एक दिन जीवन-सागर में भयंकर तूफान खड़ा कर देते हैं, जिसमें गृहस्थ की नाव फँस जाती है। और उसका परिणाम होता है विनाश । " क्या हम भी एक साधारण-सी बात को लेकर विनाश के पथ की ओर अग्रसर हो रहे हैं ? परन्तु अब क्या हो सकता है. बात बहुत बढ़ गई है। उनकी टेढ़ी भृकुटी और चढ़े हुए नेत्रों में मैंने एक भूचाल-सा देखा । उनको दुखी कर क्या मैं कभी सुख पा सकती हूँ ? क्या हरिश्चन्द्र उनसे शत्रुता रखता है ? हरिश्चन्द्र, हरिश्चन्द्र ! ठहरो, मुझे उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई